श्रीरामकृष्ण-विवेकानंद भावधारा की एकमात्र हिंदी मासिकी
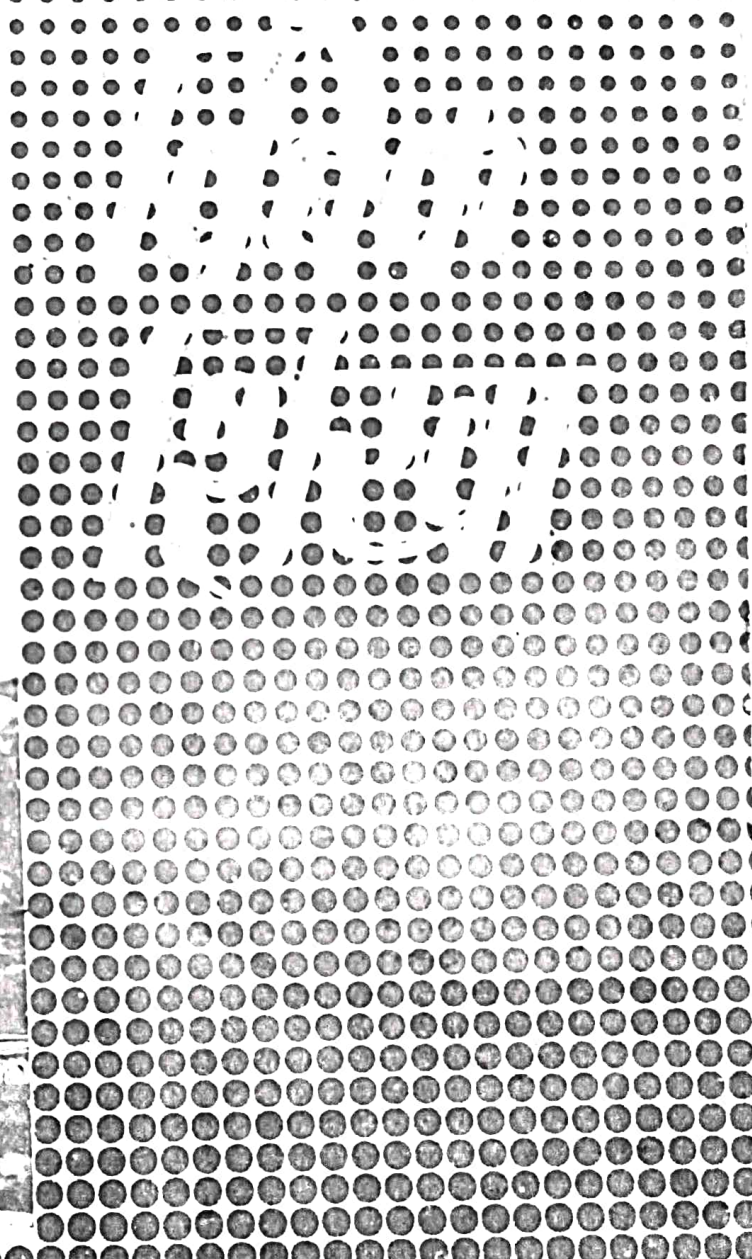
वर्ष ११ नवम्बर-दिसम्बर-१९९२ अंक-११-१२

रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाश नगर, छपरा-८४१३०१ (बिहार)

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

९१. श्रीमती कमला घोष —इलाहाबाद
९२. श्री एम. डी. शर्मा अहमदाबाद
९३. श्रीमती प्रभा भार्गव—बीकानेर (राजस्थान)
९४. श्री शशिकांत मिश्र—नारायणपुर (मध्य प्रदेश)
९५. श्री के० सी० सर्राफ—बम्बई
९६. श्री ए० के० चटर्जी, आइ. ए. एस.—पटना
९७ सचिव, थियोसोफिकल लॉज—छपरा (बिहार)
९८. श्री सुभाष वासुदेव—लुमडिंग (आसाम)
९९. श्री दिलीप देसाई, बरोदा (गुजरात)
१००. श्रीरामकृष्ण आश्रम—इन्दौर (म० प्र०)
१०१ सारदापीठ विद्यालय इन्दौर (म० प्र०)
१०२ डॉ० ओमप्रकाश वर्मा—रायपुर (म० प्र०)
१०३. विवेकानन्द विद्यापीठ—भोपाल (म० प्र०)
१०४ रामकृष्ण मठ —जामतारा (बिहार)
१०५. श्री सुनील खण्डेलवाल—रायपुर (मध्य प्रदेश)
१०६. श्री बसन्त लाल गुप्ता —नागपुर (महाराष्ट्र)
१०७. श्री जयेश ब्रह्मभट्ट —पुणे (महाराष्ट्र)
१०८. श्री नरेन्द्र कुमार टाक — अजमेर (राजस्थान)
१०९. श्री महन्त युक्तिरामजी—जोधपुर (राजस्थान)
११०. श्री राय मनेन्द्र प्रसाद जमशेदपुर (बिहार)
१११. कुमारी उषा हेगड़े—पुणे (महाराष्ट्र)
११२ श्री विनय प्रकाश—पुणे (महाराष्ट्र)
११३. डॉ० पी० सी० सिन्हा— रीवां (मध्य प्रदेश)
११४. डॉ० एच० पी० सिंह — रीवां (मध्य प्रदेश)
११५. मानस समिति, लुमडिंग (आसाम)
११६. श्रीरामचन्द्र गुप्त, लुमडिंग (आसाम)
११७. श्री चन्द्रकान्त स० नागपुरे (नागपुर)
११८. श्री अच्छे लाल श्रीवास्तव (उ० प्र०)
११९. संत जगदम्बिका (प्रयाग)
१२०. श्री अजय बलदवा, जयपुर (आसाम)
१२१. श्री बी० एस० दुबे, पुणे (महाराष्ट्र)
१२२. श्री पालीराम शर्मा, लुमडिंग (आसाम)
१२३. श्रीमती चन्द्रिका कालरा (बम्बई)
१२४. श्रीरामकृष्ण आश्रम, श्रीनगर (कश्मीर)
१२५. श्रीमती छवि सिंह, गाजीपुर (उ० प्र०)
१२६. विवेकानन्द युवा महामंडल, इन्दौर (म० प्र०)
१२७. श्री आनन्द भूषण चोपड़ा, अलॉग (अरुणाचल प्रदेश)

इस अंक में

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष — ११ १९९२—नवम्बर-दिसम्बर अंक — ११-१२

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक :
डॉ० केदारनाथ लाभ

संपादकीय कार्यालय
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर,
छपरा — ८४१३०१
(बिहार)
फोन। ०६१५२-२६३९

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य—	५०० रु०
वार्षिक—	३० रु०
रजिस्टर्ड डाक से—	४५ रु०
एक प्रति—	४ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

समुद्र का जल कभी स्थिर होता है तो कभी तरंगपूर्ण, वैसे ही ब्रह्म और माया हैं। शान्त समुद्र मानो ब्रह्म है, और तरंगायित अवस्था में माया।

(२)

जिस प्रकार बादल सूरज को ढक देता है, उसी प्रकार माया ने ईश्वर को ढक रखा है। बादल के दूर होते ही ईश्वर प्रकट हो जाते हैं।

(३)

कई लोग अपने धन-सामर्थ्य, नाम-यश या सामाजिक उच्चपद का गर्व करते हैं; किन्तु ये सभी दो दिनों के लिए हैं, मरते समय इनमें से कोई भी साथ नहीं आएगा।

(४)

जब तक अहंकार रहता है तब तक न ज्ञान होता है, न मुक्ति मिलती है; इस संसार में बार-बार आना-जाना पड़ता है।

(५)

जो अपना नाम-यश चाहते हैं वे भ्रम में हैं। वे यह भूल जाते हैं कि एकमात्र ईश्वर की ही इच्छा से सब कुछ हो रहा है, वही सब का नियामक है। ज्ञानवान् व्यक्ति कहता है 'प्रभो, तुम, तुम'; मूढ़ अज्ञानी ही 'मैं, मैं' करता है।

श्री माँ शारदा-स्तोत्र

—डॉ० रमाकान्त पाठक
पूर्व कुलपति, मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

(१)

या पृथ्वीव दयामयी तु सहने सर्वाश्रया धारिणी
या दुर्गेव भयार्त्तिविघ्नहरणी दुर्वृत्ति-संहारिणी
या गंगेव पुनाति लोकमखिलं पापौघतापापहा
सा नः पातु पुनातु भातु सततं श्रीरामकृष्णप्रिया।

(२)

या लक्ष्मीव सुदर्शना सपतिका गौरीव सिद्धासना
माताशेषचराचरस्य सरला या शारदेवाक्षता
नित्यं पत्यनुसारिणी जनकजा सीतेव या चापरा
सर्वस्मै विदधातु मंगलमुदं सा ख्रिस्तमाता इव।

(३)

प्राणाह्लाद निनादसिन्धुसवना स्कन्दस्मिताभोज्ज्वला
या विश्रान्ति विधायिनी प्रणविनी विज्ञानकोषेश्वरी
विश्वप्रेमपयोधिजातकमला माता रसस्यन्दिनी
तामानन्दकरीं विमुक्तकवरीं वन्दे सदा शारदाम्।

---

(१)

भावार्थ :—सबका भार उठाने में, सबकी करतूतें क्षमा करने में और सबको आश्रय देने में जो पृथ्वी की भाँति दयामयी हैं; दुष्प्रवृत्तियों का संहार करने में दुर्गा की तरह शक्तिशलिनी हैं; जो समग्र भय, व्याकुलता और विघ्नों को दूर करने में और समस्त दुष्प्रवृत्तियों का संहार करने में दुर्गा की तरह शक्तिशालिनी है; जो समस्त लोगों को पवित्र करने में और पाप-ताप की बाढ़ रोकने में गंगा की भाँति अजस्र हैं; श्रीरामकृष्ण की वह प्रिया हमलोगों की रक्षा करें, हमें पवित्र करें और हमें निरंतर भाती रहें।

(२)

जो लक्ष्मी की भाँति सुन्दरी और सौभाग्यशालिनी हैं, गौरी की भाँति सिद्धासन में स्थित हैं, शारदा की भाँति अक्षता हैं, जो जनक-सुता सीता की भाँति अपने पति का डग-डग पर अनुसरण करती हों; सभी चराचरों की वह निश्छला माता ख्रिस्त की जननी मरियम की तरह सब का मंगलकरें।

(३)

प्राणों के स्तम्भित हो जाने के कारण आह्लाद की जो ध्वनि उन्मथित समुद्र के लिए सोम-स्वरूपा है, जो स्कन्द की मुस्कान की तरह उज्ज्वल आभा से उद्भासित हैं, जो परम विश्राम प्रदान करने वाली ओंकार स्वरूपा हैं और विज्ञानमय कोश की अधिष्ठात्री हैं, जो विश्वप्रेम के समुद्र से कमला की तरह प्रकट हुई, रस की अनवरत वृष्टि करनेवाली, खुले बालोंवाली आनन्द प्रदायिनी हैं, उन सारदा माता को हम निरन्तर प्रणाम करते हैं।

सम्पादकीय सम्बोधन

स्वामी विवेकानन्द : भारत-परिक्रमा शताब्दी

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

१९९२ का यह वर्ष न केवल स्वामी विवेकानन्द के अनुरागियों या अनुगामियों के लिए, अथवा प्रेमियों या प्रशंसकों के लिए, बल्कि समस्त भारतवासियों के लिए, एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्मृति-पर्व का वर्ष है। यह हमारी धन्यता और कृतज्ञता-ज्ञापन का गौरवपूर्ण वर्ष है। क्या कारण है इसका? कारण यह है कि एक परिव्राजक के रूप में स्वामी विवेकानन्द ने सन् १८८७ से १८९२ तक आसेतु हिमालय समग्र भारत वर्ष की अखण्ड परिक्रमा की थी और आज से सौ वर्ष पूर्व २४ दिसम्बर, १८९२ को भारत के अंतिम भू-खंड कन्याकुमारी के शिलाखण्ड पर बैठकर राष्ट्रोद्धार के लिए गम्भीर ध्यान किया था। यह एक विलक्षण एवं विस्मयकारी घटना थी। क्योंकि विश्व के धर्म-इतिहास में उनके पहले किसी धार्मिक सन्त ने अपने ध्यान का विषय अपनी मुक्ति को न बनाकर कोटि-कोटि दीन-दलित पराधीन मनुष्यों की मुक्ति के उपाय को नहीं बनाया था।

स्वामीजी ने इसी परिक्रमा के क्रम में भारत की मूल आत्मा का दर्शन किया। उन्होंने एक ओर राजा महाराजाओं की संगमर्मरी अट्टालिकाओं में दिवा रात्रि होनेवाले भोग-विलास का कुत्सित नृत्य देखा और दूसरी ओर खेतों-खलिहानों में कार्यरत दीन-हीन भूखे-नंगे किसान-मजदूरों की दयनीय दशा देखी। उनके प्राण काँप उठे, आँखें छलछला गयीं, आत्मा चीत्कार कर उठी। अपने देश की विषमता भरी दुरवस्था देखकर वे कराह उठे— "जिस देश में करोड़ों मनुष्य महुआ के फूल खाकर दिन गुजारते हैं, और दस बीस लाख साधु और दस-बारह करोड़ ब्राह्मण उन गरीबों का खून चूसकर पीते हैं, और उनकी उन्नति के लिए कोई चेष्टा नहीं करते, क्या वह देश है या नरक? क्या वह धर्म है या पिशाच का नृत्य?"

इस भारत परिक्रमा के क्रम में ही उन्होंने भारत की इस दयनीयता के कारण का पता पाया—उन्होंने कहा, "मैं भारतवर्ष को घूम-घामकर देख चुका। क्या बिना कारण का कहीं कार्य होता है? क्या बिना पाप के सजा मिल सकती है? देश की दरिद्रता और अज्ञानता देखकर मुझे नींद नहीं आती।"

और स्वामीजी ने एक दिव्य घोषणा की अपनी क्रान्तिकारी योजना की—"मैंने एक योजना सोची तथा उसे कार्यान्वित करने का मैंने दृढ़ संकल्प किया। कन्याकुमारी में माता कुमारी के मन्दिर में बैठकर, भारतवर्ष की अंतिम चट्टान पर बैठकर मैंने सोचा कि जो इतने संन्यासी घूमते फिरते हैं और लोगों को दर्शनशास्त्र की शिक्षा दे रहे हैं, यह सब निरा पागलपन है। क्या हमारे गुरुदेव नहीं कहा करते थे—'खाली पेट से धर्म नहीं होता?' जो गरीब, जानवरों का सा जीवन बिता रहे हैं उसका करण अज्ञान है।"

इस भारत परिक्रमा के क्रम में स्वामीजी ने सोचा कि बिना समुचित शिक्षा के इस देश का उद्धार संभव नहीं। हमें गाँवों में जाना होगा। उन्होंने कहा—"यदि पहाड़ मुहम्मद के पास न आये तो मुहम्मद ही पहाड़ के पास जायेगा।" अर्थात् गरीब के लड़के विद्यालयों में न आ सकें तो उनके घर-घर जाकर उन्हें सिखाना होगा। गरीब लोग इतने बेहाल हैं कि वे स्कूलों और पाठशालों में नहीं आ सकते और कविता आदि पढ़कर उन्हें कोई लाभ नहीं।"

इस भारत भ्रमण के कारण ही स्वामीजी ने समझ लिया था कि भारत के पतन का कारण है उसकी स्वतंत्र अस्मिता और व्यक्तित्व का विनष्ट हो जाना। उन्हें प्राप्त किये बिना भारत जग नहीं सकता और उसे धर्म के द्वारा ही भारत प्राप्त कर सकता है। उन्होंने अनुभव किया—"हमारी जाति अपनी स्वतंत्र सत्ता खो बैठी है, और यही भारत में सारे अनर्थ का कारण है। हमें हमारी जाति को उसकी खोयी हुई स्वतंत्र सत्ता वापस देनी ही होगी और निम्न जातियों को उठाना होगा। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी ने उनको पैरों तले रौंदा है। उनको उठाने वाली शक्ति भी अन्दर से अर्थात् सनातनमार्गी हिन्दुओं से ही आयेगी। प्रत्येक देश में बुराइयाँ धर्म के कारण नहीं बल्कि धर्म को न मानने के कारण ही विद्यमान रहती हैं। अतः धर्म का कोई दोष नहीं, दोष मनुष्य का है।"

स्वामीजी ने किसानों-मजदूरों की सहिष्णुता, कर्म परायणता और आत्मशक्ति को निकट से देखा, पहचाना और तड़प उठे—'भारत के किसान, जुलाहे और अन्य, जो विजाति-विजित, स्वजाति-निन्दित छोटी-छोटी जातियाँ हैं, वे ही लगातार चुपचाप काम करती जा रही हैं, अपने परिश्रम का फल भी नहीं पा रही हैं। परन्तु धीरे-धीरे प्राकृतिक नियम से दुनियाँ में कितने परिवर्तन होते जा रहे हैं। ······हे भारत के श्रमजीवियो, तुम्हारे नीरव, सदा ही निन्दित हुए परिश्रम के फलस्वरूप बाबिल, ईरान, ग्रीस, रोम, वरगद'' फ्रान्सीसी, दिनेमार, डच और अंग्रेजों का क्रमान्वय से आधिपत्य हुआ और उनको ऐश्वर्य मिला है। और तुम! कौन सोचता है इस बात को ?''

इन श्रमजीवियों की महिमा को स्वामीजी प्रणाम करते हैं—"लोकजयी, धर्मवीर, रणवीर, काव्यवीर, सब की आँखों पर, सब के पूज्य हैं, परन्तु जहाँ कोई नहीं देखता, जहाँ कोई एक वाहँ-वाह भी नहीं करता, जहाँ सब लोग घृणा करते हैं वहाँ वास करती है अपार सहिष्णुता, अनन्य प्रीति और निर्भीक कार्यकारिता; हमारे गरीब घर-द्वार पर दिन रात मुँह बन्द करके कर्त्तव्य करते जा रहे हैं, उसमें क्या वीरत्व नहीं है ? बड़ा काम आने पर बहुतेरे वीर हो जाते हैं, दस हजार आदमियों की वाह-वाह के सामने कापुरुष भी सहज ही में प्राण दे देता है। घोर स्वार्थ पर भी निष्काम हो जाता है। परन्तु अत्यन्त छोटे से कार्य में भी सब के अज्ञात् भाव से जो वैसे ही निःस्वार्थता, कर्त्तव्य परायणता दिखाते हैं, वे ही धन्य; वे तुम हो—भारतवर्ष के हमेशा के पैरों तलों कुचले हुए श्रमजीवियो !—तुम लोगों को मैं प्रणाम करता हूँ।'' इस प्रकार भारत परिक्रमा के फलस्वरूप स्वामीजी गरीबों के मसीहा बन गये।

इसी प्रकार स्वामीजी ने राष्ट्र-प्रेम का अक्षय संदेश देते हुए हमें अगले पचास वर्षों तक समस्त देवी देवताओं को छोड़कर राष्ट्र देवता की ही उपासना करने का अग्नि-मंत्र दिया।

वस्तुतः स्वामीजी की इस भारत परिक्रमा का ही यह काम था कि उन्हें अपने देश की आत्मा का दर्शन हुआ, उसकी नाड़ी की पहचान हुई और उसके स्वरूप का साक्षात्कार हुआ। उन्होने अपने देश के आत्म संगीत को सुना, उसके हृदय-मंच पर होने वाले प्राणों के धर्म-नृत्य को देखा, उसके रूप लावण्य और अनाविल सौन्दर्य को देखा, उसकी कुरूपता देखी, उसकी रुग्णता देखी, उसकी दीनता देखी और उसका वैभव ऐश्वर्य देखा और इस प्रकार अखण्ड भारत से एकात्म होकर अपने ही शब्दों में वे "घनीभूत भारत" हो गये। इस भारत परिक्रमा ने ही स्वामी विवेकानन्द को आत्मद्रष्टा विवेकानन्द से युग द्रष्टा, राष्ट्र द्रष्टा विवेकानन्द बना दिया था।

कहना न होगा कि स्वामी विवेकानन्द के पूर्व किसी भारतीय साधु ने सारे भारत की ऐसी यात्रा खुली आँखों से अपने देश के आत्मदर्शन के लिए नहीं की थी।

इस भारत भ्रमण ने ही स्वामीजी को वह दृष्टि दी जिसके आधार पर विदेशों में जाकर उन्होंने बाहर से रुग्ण और दीन दलित भारत के भीतर निवास करने वाले एक अमर भारत से सारे विश्व को परिचय कराकर न केवल भारत की महिमा स्वीकार करने के लिए विश्व-चेतना को विवश किया बल्कि भारत को भी अपने पूर्वजों की पाँच हजार वर्षों की आध्यात्मिक सम्पदा पर गौरव कर अपने व्यक्तित्व को पुनर्गठित करने तथा अपनी अस्मिता को पहचानने का स्वर्ण अवसर प्रदान किया।

इतना ही नहीं, यह भारत परिक्रमा का ही फल था कि स्वामी विवेकानन्द ने भारत के युवा मन में राष्ट्र-प्रेम का वह बीज वपन कर दिया जिसने इस देश को कुछ ही वर्षों में स्वाधीनता के सूर्योदय का अमिताभ-दर्शन कराया और आज भी स्वामीजी की वाणी भारत के पुनर्निर्माण के लिए अग्नि-मंत्र सिद्ध हो रही है।

अतः हमारा कर्त्तव्य है कि हम स्वामी विवेकानन्द की भारत-परिक्रमा शताब्दी वर्ष के दौरान उनके अमृत-संदेशों को गाँव-गाँव में, नगर-नगर में आबाल-वृद्ध नर-नारी के बीच प्रचारित प्रसारित कर अपनी मुक्ति और लोक-मंगल के दैवी यज्ञ में अनाहत योगदान दें। यही उनके प्रति हमारी श्रद्धांजलि होगी, हमारा कृतज्ञता ज्ञापन होगा और होगी हमारी अशेष आन्तरिक प्रणति !

श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द के संस्मरण

—स्वामी विज्ञानानन्द
अनुवादक—डा० आशीष बनर्जी
वाराणसी

स्वामी विज्ञानानन्द जी कई दिनों से बलूड़ मठ में रह रहे हैं। उनकी अमृतमय वाणी को सुनकर जीवन में धर्मालोक लाभ करने के लिए प्रायः सुबह-शाम संन्यासी एवं ब्रह्मचारीगण उनके निकट उप... होते हैं। एक दिन संन्यासियों से उन्होंने स्वामीजी के प्रसंग में कहा, "स्वामीजी अपने कमरे में ही बैठे थे। उन दिनों यह बीच वाली किवाड़ खुली रहती थी। हम लोग इधर से भी उनके कमरे में आते-जाते रहते थे। कुछ दिनों से मेरे मन में यह विचार उठ रहा था कि स्वामीजी ने देश-विदेश भ्रमण कर सैकड़ों भाषण दिये, हर तरह के नर-नारियों से मिले, क्या यह सब ठाकुर के भाव के अनुकूल था? वे इतनी महिलाओं से क्यों मिले? यही सब मैं सोचता था। अतः एक दिन स्वामीजी को एकान्त में पाकर मैंने उनसे पूछा, "अच्छा महाराज, पाश्चात्य देश में जाकर महिलाओं से भी आपने मेल-मिलाप किया। किन्तु ठाकुर की शिक्षा एवं उपदेश दूसरे ही थे। वे कहते थे, "संन्यासी को नारी मूर्ति या चित्र भी नहीं देखना चाहिए।' मुझे भी उन्होंने विशेष रूप से कहा था "खबरदार, कभी स्त्रियों से मेल-जोल न करना, अत्यधिक भक्तिमती होने पर भी नहीं।" तभी मैं सोच रहा था, आपने ऐसा क्यों किया?' मेरी बातों को सुनकर स्वामीजी बहुत गम्भीर हो गये। उनके मुख की ओर देखकर मैं भयभीत हो गया, उनका चेहरा तमतमा उठा। थोड़ी देर बाद उन्होंने कहा, "देख पेसन, (स्वामी विज्ञानानन्द को पुकारने का नाम) ठाकुर को तूने जितना समझा है, ठाकुर क्या उतने ही हैं? और तूने ठाकुर को समझा ही कितना है? जानता है, ठाकुर ने मेरा स्त्री-पुरुष भेद मिटा दिया है। आत्मा में स्त्री-पुरुष भेद कैसा रे? इसके अतिरिक्त ठाकुर आये हैं समस्त जगत् के लिए। वे क्या चुन-चुन कर समस्त पुरुषों का उद्धार करने ही आये थे? वे सबका उद्धार करेंगे, स्त्री-पुरुष सभी का। तुमलोग अपनी-अपनी बुद्धि के अनुरूप माप दंड से नाप कर ठाकुर को इतना छोटा करना चाहते हो। उनकी कृपा इस दुनिया के नर-नारी तो पायेंगे ही, अन्य लोगों में भी वह पहुँचेगी। उन्होंने तुझे जो कुछ कहा वह मिथ्या नहीं है, वरन् अति सत्य है। उन्होंने जिस प्रकार उपदेश दिया तू उसी प्रकार चल। परन्तु मुझे उन्होंने अन्य प्रकार से कहा है। कहा क्या है स्पष्ट दिखा दिया है। वे हाथ पकड़कर जो भी कराते हैं, मैं वही करता हूँ। यह कहते-कहते स्वामीजी कुछ शान्त हुए। मैं तो स्वामीजी का यह रौद्र रूप देखकर भय से स्तंभित हो गया। मैं और क्या कहता, वहाँ से खिसक कर बचने की सोचने लगा।

मेरी स्थिति को देखकर स्वामीजी को शायद दया आ गयी। वे थोड़ा मुस्कुराकर बोले, "नारियों के अन्दर उस आद्या शक्ति को बिना जगाये क्या किसी जाति का जागरण हो सकता है? मैंने तो सारी दुनिया घूम-घूम कर देख ली। सभी देशों में महिलाओं की स्थिति एक सी ही है, विशेष रूप से अपने देश में। इसी कारण इस जाति का इतना अधःपतन हैं। नारियों के जगाने से ही देखोगे, समस्त जाति जाग उठेगी। इसी कारण माँ सारदा आयी हैं। माँ के आगमन के बाद से ही सभी देशों की नारियों में जागरूकता आयी है। यह तो केवल प्रारम्भ मात्र है, अभी कितना कुछ होगा, देखोगे।

"स्वामीजी और कु कहने जा रहे थे, कि इसी समय एक व्यक्ति के वहाँ आ जाने से स्वामीजी उसी से बात करने लगे। मैं भी उस समय कमरे से चला आया।

स्वामीजी इतनी दृढ़ता के साथ सब बात कह रहे थे कि उनके प्रत्युत्तर में कुछ कहने का साहस मुझ में न था। परन्तु मैं मन ही मन सोच रहा था कि ठाकुर ने मुझे जिस प्रकार बताया था, मैं वैसा ही करूंगा। स्वामीजी की बात स्वतंत्र है। वे ठाकुर के प्रमुख पार्षद हैं। वास्तव में स्वामीजी ने ठाकुर को जैसा समझा था वैसा और कौन समझ सकता है ? उनके द्वारा ही ठाकुर ने अपने सब कार्य करवा लिये। स्वामीजी तो अद्वितीय हैं। हमलोग तो स्वामीजी नहीं हो सकते, वैसे, स्वामीजी अपनी पाश्चात्य शिष्याओं के साथ आलाप-आलोचना करते थे अवश्य, परन्तु नये संन्यासी अथवा ब्रह्मचारियों को कभी भी उनके निकट नहीं जाने देते थे। उनको कोई सामान आदि भिजवाना होता तो स्वयं अथवा किसी प्रौढ़ संन्यासी के हाथ भिजवाते थे। यहां तक कि अपने कुछ गुरुभाइयों को भी उन लोगों के करीब नहीं जाने देते थे।

"स्वामीजी से मैं जितना प्रेम करता था उतना ही डरता भी था। जब देखता था कि उनका मिजाज ठीक नहीं है तो मैं उनसे दूर ही रहता था। उस समय यदि स्वामीजी मुझे बुलाते तो मैं उनको दूर से ही 'महाशय, अभी मैं बहुत व्यस्त हूँ, फिर आऊँगा।" कहकर वहां से नौ दो ग्यारह हो जाता था।

'स्वामीजी अभी भी यहां हैं। मैं तो उनके कमरे के सामने से गुजरते समय दबे पैर जाता हूँ ताकि उन्हें कोई असुविधा न हो। उनके कमरे की तरफ देखता तक नहीं हूँ, कहीं उनसे आँख न मिल जाय।"

इस बात को सुनकर किसी संन्यासी ने उनसे पूछा, "महाराज, स्वामजी क्या अभी भी आपको दिखाई देते हैं ?"

महाराज—"वे रह रहे हैं और मैं देख न पाऊँ ? वे इस सामने के बरामदे में घूमते हैं, छत पर चहल-कदमी करते हैं, कमरे में गाना गाते हैं, और भी बहुत कुछ करते हैं।"

एक संत से वार्त्तालाप

स्वामी अद्भुतानन्द के संस्मरण

(स्वामी अद्भुतानन्द श्रीरामकृष्णदेव के अन्तरंग संन्यासी-शिष्यों में से थे, जो रामकृष्ण संघ में लाटू महाराज के नाम से परिचित हैं। उनके ये संस्मरण 'वेदान्त एण्ड दि वेस्ट' पत्रिका से साभार गृहीत एव अनूदित हैं।—सं०)

लाटू महाराज के एक जीवनीकार लिखते हैं : मैंने स्वामीजी (स्वामी अद्भुतानन्दजी) को कुछ दिनों तक यहाँ (सम्भवतः बेलुड़ मठ में) उस समय देखा था, जब स्वामी सारदानन्दजी यूरोप और अमेरिका से हाल में,ही मठ वापस लौटे थे और मठ में रह रहे थे। तब स्वामी सारदानन्दजी बहुत चुस्त दिखायी देते थे तथा अपने कमरे एवं सामान को खूब स्वच्छ और व्यवस्थित जमाकर रखते थे। उस समय लाटू महाराज उनके कमरे में घुस जाते और दो-चार किताबें इधर उधर उलटी-सीधा रख, दावात को किसी कोने में छिपा देते तथा इसी प्रकार कुछ उलटा-सीधा करके कमरे को अस्त-व्यस्त कर देते। यह एक प्रकार से उनका नित्य का क्रम हो गया था। सारदानन्दजी के बिछौने की चादर एकदम शुभ्र सफेद होती। लाटू महाराज ने एक बार अपने मैले पैरों से उसे गन्दा बना दिया और फिर उस पर लेटकर वे लोटते रहे। और यह सब करते समय वे हँसते जाते। यह देख शरत् महाराज (सारदानन्दजी) ने उनसे पूछा, "यह क्या कर रहे हो, लाटू भाई ?" इस पर लाटू ने शरारत-भरी हँसी हँसते हुए कहा, "मैं सिर्फ यह देखना चाहता था कि तुम यह तो नहीं भूल गये कि पहले वस्तुएँ किस प्रकार रहा करती थीं। मैं जानना चाहता था कि तुम कितने अंगरेज बन गये हो !" और तब तो

शरत् महाराज भी हँस पड़े ।

एक अन्य अवसर पर कई साधु लोग एक साथ नाव द्वारा मठ से बाहर कहीं जाने की तैयारी कर रहे थे । सिवाय स्वामी विवेकानन्दजी और सारदानन्दजी के सभी नाव में बैठ गये थे । स्वामी विवेकानन्दजी दूसरी मंजिल में अपने कमरे से उन लोगों के साथ जाने के लिए निकलते दिखायी दिये, इस पर स्वामी नित्यानन्द ने नाव में से चिल्लाकर कहा, "एक साहब तो दिख रहे हैं, पर दूसरे अभी भी अदृश्य हैं । हम उनके पुनीत आगमन की प्रतीक्षा में हैं !" लाटू महाराज ने इस पर कोई मजेदार बात कह दी, जिसके उत्तर में विवेकानन्दजी ने कहा, "तुम शैतान लोग क्या कह रहे हो ? यद्यपि हम लोग साहब जैसे दिखते हैं, पर यह जान लो कि हम लोग यह नहीं भूले हैं कि हम लोगों का वास्तविक स्थान जंगल में वृक्ष-तले है ।"

९ सितम्बर, १९०० की रात्रि में स्वामीजी (विवेकानन्दजी) वेलुड़ मठ में विदेश से अप्रत्याशित रूप से वापस लौटे थे । एक गृहस्थ भक्त, जो उस दिन वेलुड़ मठ में ही थे, उसका इस प्रकार वर्णन करते हैं :—

रात्रि के भोजन के थोड़ी देर बाद ही आश्रम के माली ने आकर स्वामीजी लोगों से कहा कि कोई अंग्रेज साहब मिलने के लिए आये हैं । स्वामी प्रेमानन्दजी से कहा गया कि वे जाकर उनका स्वागत करें । सभी की यही धारणा थी कि स्वामी विवेकानन्दजी के कोई अंग-रेज शिष्य आये होंगे । प्रेमानन्दजी आधी दूर ही गये होंगे कि मार्ग में ही उनकी उस विचित्र नवागन्तुक से भेंट हो गयी (जो दरवाजे से कूदकर भीतर घुस आया था !) । पहले अँगरेजी में थोड़ा वार्तालाप करने के बाद नवागन्तुक ने एकदम बंगला में बोलना शुरू कर दिया । पहचानकर हँसते हुए प्रेमानन्दजी ने कहा, "अरे नरेन्द्रदा, तुम हो ? आने के पहले वहाँ से तार (cable) क्यों नहीं कर दिया ?"

तब तो सभी स्वामीजी लोग विवेकानन्दजी का स्वागत करने के लिए दौड़ पड़े—सिर्फ लाटू महाराज को छोड़, जो मठ के गंगाजीवाले घाट के किनारे बैठे थे । एक भक्त ने जाकर उन्हें स्वामीजी के आगमन का समाचार दिया । उसे उम्मीद थी कि लाटू महाराज एकदम उठकर अपने विदेश से लौटे गुरुभाई से मिलने के लिए चल पड़ेंगे, पर जब उसने लाटू महाराज में किसी भी प्रकार की उतावली के चिह्न नहीं देखे, तो वह चकित रह गया । यही नहीं, बल्कि लाटू महाराज ने उस भक्त को वहीं गंगाजी के किनारे बैठकर ध्यान करने के लिए कहा । "इतना उत्तेजित होने की क्या आवश्यकता है ? यह ध्यान करने के लिए बहुत उपयुक्त समय है । बैठो, यहीं बैठो," ऐसा कहकर उन्होंने फिर कहा, "देखो, गंगाजी कितनी शान्त हैं । ध्यान करो ।"

उस भक्त की कष्टप्रद मनोदशा की कल्पना की जा सकती है । एक तरफ तो वह स्वामीजी की बातों को सुनने के लिए आतुर था, पर दूसरी तरफ लाटू महाराज के आदेश को टालने में भी असमर्थ था । इसी बीच स्वामीजी भोजन समाप्त कर घाट पर लाटू महाराज से मिलने के लिए आये । दोनों ने एक दूसरे का काफी देर तक आलिंगन किया । कुछ वार्तालाप के बाद स्वामीजी ने लाटू महाराज से पूछा, "क्या बात है, प्लेटो ? सभी लोग मुझसे मिलने आये, पर तुम नहीं आये ? क्या तुम मुझसे नाराज हो ?"

"मैं भला क्यों नाराज होऊँगा ?" लाटू महाराज ने उत्तर दिया, "मेरा मन यहीं रहने को हुआ इसलिए मैं यहीं रह गया ।"

"मैंने सुना कि तुम मठ में ज्यादा दिन नहीं रहे । अपने खाने पीने की व्यवस्था किस प्रकार करते थे ?"

लाटू महाराज ने उत्तर दिया, "क्यों, उपेन मुखर्जी मेरी सहायता करते थे । मैं उनके छापेखाने के कमरे में सोता था । यदि वे भोजन भेजना भूल जाते, तो मैं उनकी दुकान के सामने जाकर खड़ा हो जाता और वे समझ जाते तथा मुझे दो चार आने पैसे दे देते ।"

जब स्वामीजी ने यह सुना, तब ऊपर ताककर उन्होंने कहा, "हे प्रभो, उपेन पर कृपा करो ।"

उस दिन चाँदनी छिटकी हुई थी । स्वामीजी ने आर-पार देखकर कहा, "गंगा की रुपहली लहरों को

देखो। नील नदी की लहरें बहुत कुछ इसी प्रकार की हैं।" कुछ समय तक बातें कर स्वामीजी मठ में वापस रात्रि-विश्राम के लिए चले गये। लाटू महाराज जहाँ थे, वहीं बैठे रहे और शीघ्र ही ध्यानमग्न हो गये।

दूसरे दिन सुबह ४ बजे एक भक्त ने पत्र डालने के लिए मठ से जाते समय देखा कि लाटू महाराज वहीं उसी मुद्रा में तब भी ध्यानमग्न बैठे हुए थे।

स्वामी अद्भुतानन्दजी ने उपेन बाबू के छापेखाने में रहते समय अपने खाने-पीने की व्यवस्था के सम्बन्ध में यों बतलाया था—"उन दिनों जब मुझे भोजन न मिलता, तब मैं उपेन बाबू के पास जाकर उनसे कुछ पैसे माँग लेता तथा दुकान से पूड़ी और आलू की तरकारी लेकर खा लेता। भगवान् की दया से मुझे बदहजमी की कोई शिकायत नहीं थी। न ही मुझे कभी किसी निश्चित समय पर किसी भक्त के यहाँ या अपने किसी गुरुभाई के पास भोजन के लिए उपस्थित होना पड़ता था। यदि ठीक समय पर भोजन न करो, तो दूसरे नाराज होते हैं यह देख मैंने दूसरों के यहाँ भोजन करना बन्द कर दिया था तथा बाजार से खरीदकर खाने लगा था। पर हाँ, यह जरूर है कि पैसा भक्तों का ही रहता। पर इससे स्वतन्त्रता में कोई बाधा नहीं होती। मेरा समय अपना समय होता और मैं मौज में रहता।"

१८९६ साल में लाटू महाराज ने करीब आठ महीने कलकत्ते में बागबाजार के वीरवहार घाट पर बिताये थे। एक भक्त गुजा भट्टाचार्य, ने अपना अनुभव लिखा है :—

मैं वीरवहार घाट पर एक संन्यासी को शास्त्र-चर्चाएँ बड़े ध्यान से सुनते हुए देखता था। प्रवचन के बाद मैं उनको चरणस्पर्श कर प्रणाम करता। वे कभी किसी से कुछ नहीं बोलते थे, सिर्फ एक कोने में शान्त, चुपचाप बैठे रहते। न कभी किसी से कुछ मांगते और न ही किसी को कोई आदेश देते थे।

एक दिन मैंने अपने एक मित्र पटल को उस विचित्र संन्यासी के सम्बन्ध में बतलाया था। इसलिए वह उसके बाद वाले प्रवचन में आया। उसे सुनने का तो उतना आग्रह नहीं था, जितना कि उस साधु को देखने का था। जैसे ही उसने उसको गौर से देखा, वह बोल उठा, "अरे, क्या ये हमारे लाटू महाराज तो नहीं ?" प्रवचन के शेष होने पर वह संन्यासी के पास गया तथा केश एवं दाढ़ी बढ़े होने के बावजूद उसने लाटू महाराज को पहचान लिया। "आप यहाँ कैसे महाराज ?" उसने कहा। "हमारे साथ चलिए। क्या आप नहीं जानते कि स्वामीजी (विवेकानन्दजी) शीघ्र ही कलकत्ता लौटनेवाले हैं ?"

"वे कब आ रहे हैं ?" लाटू महाराज ने पूछा।

निश्चित तिथि न मालूम होने से हम लोग चुप रह गये। तब लाटू महाराज ने हम लोगों की ओर देखा और कहा, "अच्छा, ठीक है, चलो।"

आनन्दित हो हम लोग उन्हें अपने घर ले गये। दूसरे दिन ही हम लोगों ने नाई को बुलाकर उनका मुण्डन करवा दिया। तीन-चार दिन हम लोगों के साथ बिताकर वे बलराम बाबू के घर चले गये।

श्रीरामकृष्णदेव के लीला-संवरण के कुछ समय पश्चात् ही श्री माँ (सारदादेवी) तीर्थयात्रा पर गयी थीं। साथ में लक्ष्मीदीदी, निकुंज देवी (नाग महाशय की पत्नी), गोलाप-माँ तथा स्वामी योगानन्द एवं अद्भुतानन्द थे। यात्रा का पहला पड़ाव देवघर में था। वहाँ शिवजी की पूजा करने के पश्चात् वे लोग वाराणसी के लिए रवाना हुए। वहाँ तीन दिन तक रुककर उन्होंने विभिन्न मंदिरों के दर्शन किये तथा अनेक साधु-महात्माओं से वार्तालाप किया। वहाँ वे सुप्रसिद्ध सन्त एवं विद्वान भास्करानन्दजी के पास भी गये थे। लाटू महाराज की उनसे काफी देर तक बातें हुई थीं। वे बतलाते—

"स्वामी भास्करानन्द ने मुझसे कहा था, 'अपना समय घूमने में नष्ट न करो। एक स्थान में बैठकर उनको पुकारो, तब उनकी कृपा जरूर होगी। मैं जब युवक था, तब बहुत से तीर्थों में बहुत से साधुओं के साथ रहा। मैंने पैदल ही चारों धाम (बद्री-केदार, पुरी, द्वारका और रामेश्वर) के दर्शन किये थे। इस सबके बावजूद मुझे बहुत कम उपलब्धि हुई थी। मैं पहले के समान ही अज्ञानी और दुःखी बना हुआ था। तब कहीं मैं इस बगीचे में आकर बैठा और अपने आप से कहा—मैं यहीं पर ईश्वर-दर्शन करूँगा और नहीं तो मेरा शरीर खत्म हो जाय। अब कहीं मुझे थोड़ा बहुत स्थायी आनन्द मिला है।"

जीवन में साधना की आवश्यकता

—स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

(प्रस्तुत लेख रामकृष्ण संघ के आंग्ल मासिक 'वेदान्त केसरी' के दिसम्बर '८० अंक से गृहीत एवं अनूदित हुआ है। अनुवादक हैं प्रो० सुरेश कुमार मिश्र। --स०)

आत्मा के प्रति वेदान्ती दृष्टिकोण की व्याख्या करते हुए स्वामी विवेकानन्द ने कहा था—"प्रत्येक मनुष्य एक पूर्ण प्राणी है।" किन्तु उलटे हर मनुष्य महसूस करता हैं कि वह अपूर्ण है और इसी से असंतुष्ट भी। तथापि, इस पूर्णता को प्राप्त करने की उसमें एक अदम्य लालसा होती है और जब तक पूर्ण बनने की उसकी यह लालसा सही अर्थ में संतुष्ट नहीं होती, वह कभी भी शांतिपूर्वक नहीं रह सकता। और जैसा कि गीता कहती है—"शांति के बिना सुख आ ही नहीं सकता।"

वस्तुतः, मानव पूर्ण है। इस कारण अपूर्णता का अनुभव मानव में कुछ सीमा तक बाहरी है। जब तक व्यक्ति इस बाहरी वस्तु के साथ स्वयं को संयुक्त मानता है, वह अपूर्णता की अनुभूति से छुटकारा पा ही नहीं सकता। चाहे वह कितनी भी चेष्टा क्यों न करे और इसी क्रम में वह असंतुष्ट और दुःखी होता रहेगा।

इस पृथ्वी पर मानव-जीवन एक सुअवसर के रूप में हमें मिला है ताकि हम अपनी अन्तर्निहित पूर्णता को महसूस कर सकें तथा मुक्त हो सकें। स्वतंत्रता अथवा मुक्ति मानव-जीवन का एक सर्वोच्च लक्ष्य है। इस सर्वोच्च लक्ष्य की तरफ बढ़ने का प्रथम कदम यह जानना है कि पूर्णता पहले से ही हमारे भीतर है। किसी तरह हमने अपनी मूल प्रकृति को भुला दिया है तथा अपूर्णता के साथ अपनी पहचान बना ली है।

कारण

हिन्दू गुरु हमें बताते हैं कि अज्ञान ही सारी अपूर्णताओं एवं दुःखों का मूल है। अपूर्णता एवं दुखों के बन्धन से बाहर निकलने का एकमात्र रास्ता है—ज्ञान प्राप्त करना या अज्ञानता को दूर भगाना। चूँकि ज्ञान वस्तुतः हमारे जीवन की वास्तविक प्रकृति है, हमें उसे कहीं बाहर से नहीं प्राप्त करना है, जैसे हम बाहर से कुछ वह प्राप्त करते हैं जो हमारे पास पहले से नहीं था। प्रकाश तो हमारे भीतर है,—सदा चमकता हुआ। कुछ अपारदर्शी वस्तुओं ने इसे आवृत कर डाला है। हमें सिर्फ इन वस्तुओं को हटा देना है। तब प्रकाश अपनी पूरी शक्ति से चमक उठेगा।

साधना क्या है

हमारे दिव्य स्वभाव की प्रत्यक्ष अनुभूति इस जन्म और इसके बाद के जन्म की समस्याओं का समाधान कर देती है। यह अनुभव सर्वप्रथम कुछ अत्यावश्यक शर्तों के रूप में कुछ विशिष्ट प्रकार के अनुशासनों का समर्थन करता है। इन्हीं अनुशासनों को साधना कहते हैं। यह ध्यान देने योग्य है कि दिव्य अनुभूति के लिए ये केवल शर्तें हैं, न कि ये स्वयं अनुभव हैं। न ही यही कहा जा सकता है कि ये अनुशासन शीघ्र दिव्य अनुभूति की तरफ सीधे अग्रसर करा देते हैं। ये हमें दिव्य अनुभूति के लिए तैयार करते हैं, लेकिन स्वयं अनुभव इश्वरीय कृपा से ही प्राप्त होता है।

यदि दिव्य अनुभूति मात्र ईश्वरीय कृपा से ही आती है तथा अन्य किसी भाँति नहीं, तो क्या इन अनुशासनों की हम उपेक्षा नहीं कर सकते ? नियमतः "नहीं।" क्योंकि बिना किसी प्रारम्भिक योग्यता के दिव्य अनुभूति की प्राप्ति एक अपवाद है, और 'अपवाद' 'अपवाद' है, इसे सामान्य नियम का रूप नहीं दिया जा सकता। ये अनुशासन—जिनके पीछे दिव्य अनुभूति आती है सभी

धार्मिक एवं आध्यात्मिक गुरुओं के द्वारा स्वीकृत किये गये हैं।

साधना के कार्य

बाइबिल कहती हैं—'धन्य हैं पवित्र हृदयवाले, क्योंकि वे ईश्वर का दर्शन करेंगे।"। (सेंट मैथ्यू : ५-८) यह ईश्वर को देखना, अपने भीतर छिपी पूर्णता का ही अनुभव करना तथा मुक्त होना है। "पवित्र हृदय वाले ईश्वर को देखेंगे।" ईश्वर को देखने की मौलिक शर्त है—हृदय की पवित्रता। किसी तरह की सच्ची आध्यात्मिक अनुभूति हृदय के पूर्ण पवित्र हुए बिना हो ही नहीं सकती।

हृदय की अपवित्रता क्या है? मन को दो प्रकार का कहा गया है—शुद्ध और अशुद्ध। वह मन जो सांसारिक सुखों को खोजता है—अपवित्र है और सांसारिक वासना से दूर ले जाने वाला मन पवित्र है।

सांसारिक सुखों के उपभोग की इच्छा इहलोक एवं परलोक में भी हृदय को अशुद्ध कर देती है। हिन्दू धर्मगुरुओं ने समस्त सांसारिक ऐषणाओं को तीन रूपों में रखा है—(क) पुत्रैषणा (ख) वित्तैषणा तथा (ग) लोकैषणा! यानी पुत्र की इच्छा, वित्त की इच्छा एवं नाम-यश या स्वर्ग—प्राप्ति की इच्छा। हमारी सारी दैहिक इच्छाएँ पुत्रैषणा के अन्दर आती हैं। वित्तैषणा के तहत सम्पत्ति और स्वामित्व की इच्छाएँ आती हैं तथा नाम यश, शक्ति और पद तथा मरणोपरान्त स्वर्ग-प्राप्ति की इच्छा—ये सब लोकैषणा के अंतर्गत आती हैं। यही इच्छाओं का त्रिकोण हृदय की अपवित्रता का कारण है।

संस्कार : प्रेरक बल

"हम इस समय जो भी हैं"—विवेकानन्द कहते हैं—"वह भूतकाल में हम जो कुछ रहे हैं या हमने सोचा था, उसी का परिणाम है। भविष्य में हम क्या होंगे, यह इसका परिणाम होगा कि हम लोग इस समय क्या करते या सोचते हैं।"

हमारे मस्तिष्क का झुकाव, उसकी रुचियाँ आकांक्षाएँ—सब हमारे भूतकाल के विचारों एवं कर्मों के परिणाम हैं। हमने इन विचारों एवं कर्मों को भूतकाल में कई-कई बार दुहराया है। उन्होंने हमारे मनोमस्तिष्क पर गहरी छाप छोड़ी है जिन्हें संस्कार कहते हैं। यही संस्कार हमारे वर्तमान के विचारों एवं कार्यों के पीछे कार्यरत प्रबल शक्तियाँ हैं। यदि सांसारिक विचार एवं इच्छाएँ—इन्द्रिय-तुष्टि के लिए—हममें मजबूत हैं तो इसका अर्थ है कि हमने भूतकाल में उनको असंख्य बार दुहराया है। उन्होंने हमारे मस्तिष्क पर बुरे संस्कार उत्पन्न कर डाले हैं तथा इस प्रकार हमारे हृदय को दूषित कर डाला है।

शुद्धिकरण के द्विविध मार्ग

साधना का उद्देश्य है इस दूषित हृदय को शुद्ध करना। इसके दो पक्ष हैं—ऋणात्मक एवं धनात्मक। सर्वप्रथम, हृदय को आगे पुनः दूषित होने से रोकना आवश्यक है। इस प्रकार, साधना का ऋणात्मक पक्ष बताता है कि सारे सांसारिक विचार एवं स्वार्थपूर्ण कर्म पूरे हृदय से रोक दिये जाएँ।

साधना का धनात्मक पक्ष कुछ अनुशासन प्रस्तुत करता है जो हृदय को पवित्र करते हैं।

साधना के मूल गुण

साधना 'लक्ष्य' या 'साध्य' तक पहुँचने का माध्यम है न कि स्वयं में 'लक्ष्य' या 'साध्य'। हिन्दू-दर्शन एवं धर्म के विविध मार्गों के समस्त गुरु आध्यात्मिक अनभूतियों के लिए साधना की आवश्यकता स्वीकारते हैं। वे सब साधना के कुछ आधारभूत गुणों पर एकमत है। यदि इन आधारभूत अनुशासनों का उचित रूप से एवं अति सतर्कतापूर्वक अनुसरण हो तो वे हमें ईश्वरीय कृपा की प्राप्ति के लिए सुयोग्य पात्रता प्रदान करते हैं।

अपने एक कक्षा-व्याख्यान में साधना के आधारभूत गुणों की व्याख्या करते हुए स्वामी विवेकानन्द ने कहा था—"ये तैयारियाँ हमें पवित्र एवं प्रसन्न बनाएँगी। बंधन स्वयं गिर जाएँगे तथा हम उस इन्द्रिय-तुष्टि की सतह से ऊपर उठ जाएँगे जिसमें बंधे हैं और तब हम

उन तमाम चीजों को देखेंगे और सुनेंगे तथा महसूस करेंगे जिनको लोग तीन सामान्य स्थितियों (जाग्रत, स्वप्न एवं सुषप्ति) में न महसूस करते, न देखते, न सुनते हैं।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि सिद्धांततः यद्यपि साधनाएँ आध्यात्मिक अनुभूति की प्रत्यक्ष स्रोत नहीं हैं तथापि आध्यात्मिक अनुभूति के लिए उनके महत्व एवं भूमिका को नगण्य नहीं कहा जा सकता।

शरीर का प्रशिक्षण

मात्र मानव-योनि में ही "आत्मतत्व" को अनुभूत किया जा सकता है तथा जीव मोक्ष प्राप्त कर सकता है। मानव-व्यक्तित्व देह मन का मिश्रित रूप है। मुक्ति के इच्छुक को अपनी देह एवं मन को प्रशिक्षित करना होगा तथा मुक्ति-प्राप्ति हेतु एक सुयोग्य यंत्र बनाना होगी।

यह उक्ति कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन निवास करता है—साधना के क्षेत्र में भी पूर्णतः लागू होती है। साधना का मूल उद्देश्य है—हृदय की शुद्धि। यह उद्देश्य तब तक सिद्ध नहीं हो सकता जब तक शरीर सहयोग नहीं करता। शरीर उस जवान और अनसाधे घोड़े की तरह है जो सदा अपने ऊपर सवारी करने वाले को लात मारना और गिरा देना चाहता है। उत्तम सवार जो अच्छे उद्देश्य से घोड़े का उपयोग करना चाहता है, धैर्य रखता है तथा धीरे-धीरे, मगर निश्चित रूप से, घोड़े को प्रशिक्षित कर लेता है। इसी प्रकार, जब हम युवा हैं, हमारा शरीर एवं हमारी इच्छाएँ मजबूत हैं, वे हमारे नियंत्रण में नहीं है। इच्छाएँ हमें खींचकर वस्तु तक पहुँचा देती हैं। साधना का प्रथम कदम है—दुर्दम शरीर एवं इन्द्रियों को रोकना एवं नियंत्रित करना।

दम

शरीर एवं इन्द्रियों का नियंत्रण करना ही 'दम' है। यह बिना लगाम वाली बाह्य इन्द्रियों को लगाम देना और उनको आध्यात्मिक अनुभूति की तरफ मोड़ना है। यह दमन नहीं, बल्कि नियंत्रण है। दम की साधना करते समय ध्यान देना है कि अति पर न जाएँ तथा न शरीर के साथ अत्याचार करें। शरीर को अनिवार्यतः योग्य एवं स्वस्थ रहना ही चाहिए।

शम

तदुपरांत, मन को नियंत्रित एवं प्रशिक्षित करने वाली कुछ और कठिन और लम्बे समय तक चलनेवाली साधना का स्थान है। मनोनिग्रह एक पूर्ण विकसित विज्ञान है। हिन्दू योगी तथा आध्यात्मिक गुरुओं ने कई-कई जीवन इस विज्ञान के विकास हेतु अर्पितकर दिये हैं। विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों के लिए विभिन्न प्रकार के तरीकों को खोजा गया है। प्रत्येक नर-नारी ने अपनी कुछ खास मानसिक-शारीरिक बनावट प्राप्त की है। साधना शुरू करने के पूर्व इन विशिष्टताओं पर अवश्य विचार कर लेना चाहिए। व्यक्ति के उचित निरीक्षण के उपरांत ही साधना का एक अनुकूल तरीका किसी के लिए निर्धारित किया जा सकता है। पहुँचे हुए, अनुभवी गुरु ही विशेष व्यक्ति के अनुकूल विशेष प्रकार की साधना निर्धारित कर सकते हैं। लेकिन, कुछ ऐसी भी साधनाएँ हैं जो सामान्यतः प्रत्येक उच्चतर जीवन के इच्छुक व्यक्ति के लिए हैं।

मन को नियंत्रित करने की विधि का नाम है 'शम'। हमारे पूर्व के जीवन के संस्कारों के कारण मन सांसारिक सुखों की तरफ भागता है। सांसारिक सुखों को वह सदा याद करता (जिनका अनुभव उसे पहले हुआ है) तथा भविष्य के सुखों का हवाई किला बनाता रहता है। मन को इन दोनों ही स्थितियों से रोकना और उच्चतर लक्ष्य की तरफ लगाना ही 'शम' है।

साधना के सामान्य नियम

सारे हिन्दू आधात्मिक शिक्षक इस बिन्दु पर एकमत हैं कि नैतिक पूर्णता सब प्रकार की पूर्णताओं की प्राप्ति हेतु साधनाओं का मूल है।

सामान्य नैतिक सिद्धांतों को पाँच वर्गों में विभाजित किया जा सकता है (१) सत्य (२) अहिंसा (३) ब्रह्मचर्य (४) अस्तेय और (५) अपरिग्रह। सत्य या सच्चाई सिर्फ सच बोलना ही नहीं है, जैसा सामान्यतः समझा जाता है। साधक को विचार, वचन और कर्म—सर्वत्र

सच्चा होना पड़ेगा। हमारे विचार, हमारे वचन और हमारे कर्म एक दूसरे का निश्चित रूप से अनुकरण करें।

किसी जीवित प्राणी को घायल नहीं करना अहिंसा है। घनात्मक रूप से यह सारे प्राणियों के प्रति आदर का भाव है। वस्तुतः तो किसी प्राणी के भावों को, वचन या कर्म से चोट पहुँचाना ही हिंसा है। अहिंसा की उचित साधना के लिए साधक को सिर्फ दूसरों के जीवन का ही नहीं, वल्कि दूसरों की भावनाओं का भी आदर करना चाहिए। समस्त प्राणियों के लिए निःस्वार्थ प्रेम—यह भी अहिंसा के अंतर्गत है। ब्रह्मचर्य, जिसे प्रायः यौन-आवेगों के दमन के अर्थ में ग्रहण किया जाता है—यौन-भूख के नियंत्रण तक ही सीमित नहीं है। इसके अतिरिक्त यह मस्तिष्क की समस्त संवेदनाओं एवं आवेगों का नियंत्रण तथा पूर्णता की प्राप्ति के उच्चतर लक्ष्य की तरफ उनको मोड़ना भी इसमें निहित है। अस्तेय का अर्थ है चोरी नहीं करना। कोई भी चीज जो हमारी नहीं है, उसे उसके मालिक की अनुमति के विना लेना चोरी है। इस कार्य से बचना ही अस्तेय है। पर नैतिक दृष्किोण से, अपनी आवश्यकता से ज्यादा किसी भी वस्तु को लेना—भले उसके स्वामी की सहमति ही क्यों न मिली हो—चोरी है। इस तरह, अस्तेय का अर्थ हुआ—हर प्रकार की उस वस्तु से परहेज जिसकी हमें जरूरत नहीं है। अपरिग्रह का अर्थ है—असंचय। इसका मतलब गरीबी नहीं होता। एक भिखारी अपरिग्रह का साधक नहीं है क्योंकि यद्यपि उसने अधिक संचय नहीं किया है तो भी उसने संचय की प्रकृति को छोड़ नहीं दिया है। अपरिग्रह का अर्थ है—स्वामित्व की इच्छा का त्याग तथा शारीरिक एवं मानसिक जरूरत भर कम से कम रखना।

ये सारे नैतिक गुण वस्तुतः कोई निश्चित आकार-प्रकार की वस्तुएँ नहीं है जिनकी अलग-अलग साधना की जा सके। ये सब एक दूसरे के साथ आंतरिक रूप से गुँथे और शृंखलाबद्ध हैं। एक गुण की साधना अन्य साधना का मार्ग प्रशस्त करती हैं। इसी प्रकार, किसी एक साधना में हुई असावधानी या उपेक्षा दूसरी साधना में बाधा खड़ी कर देती है। यह देखा जा सकता है कि शम और दम—जिसके अंतर्गत ये सारे गुण आते हैं—एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इसलिए, चित्त की शुद्धि के लिए उसकी साधना एक साथ करनी चाहिए।

वस्तुत- शम और दम की यह साधना जीवन जीने का एक मार्ग है। यह संभव नहीं कि सुखद सांसारिक जीवन जिएँ एवं साथ ही जीवन की पूर्णता के लिए शम और दम की साधना भी करें। योग और भोग साथ नहीं चल सकते। 'विवेक चूड़ामणि' में आचार्य शंकर कहते हैं—"जो भी शरीर को आराम देते हुए आत्मतत्व की अनुभूति प्राप्त करना चाहता है, वह उस व्यक्ति की तरह है जो नदी पार करने के लिए घड़ियाल की पीठ को गलती से लकड़ी का कुन्दा मानकर पकड़ लेता है।"

साधना मात्र तभी शुरू हो सकती है जब कोई व्यक्ति निश्चयपूर्वक एक महान् उद्देश्य के हेतु समर्पित होने का निर्णय कर लेता है। कोई भी महत् वस्तु जीवन के सामान्य मार्ग से चलकर प्राप्त नहीं की जा सकती है। महान् उपलब्धि महान बलिदान खोजती है। पूर्णता प्राप्त करने के इच्छुक साधक को अपने जीवन को साधना के उस मार्ग की तरफ मोड़ना होगा जिसे विश्व के आध्यात्मिक गुरुओं ने निर्धारित किया है।

'भक्तियोग' संबंधी अपने उपदेश में स्वामी विवेकानन्द घोषणा करते हैं—"हर आत्मा की नियति है पूर्ण होना तथा प्रत्येक प्राणी इस स्थिति को अंततः प्राप्त करेगा।"

पूर्णता की प्राप्ति हमारे चुनाव पर निर्भर नहीं। हमें इसे प्राप्त करना होगा, यदि इस जीवन में नहीं, तो अगले हजारों जन्मों में ही कभी। प्रकृति हमें दुःख सुख के असंख्य अनुभवों से असंख्य वार गुजरने को वाध्य करेगी, तब तक, जब तक अंततः हम सचेतन न हो जाएँ और महसूस न करें कि सुख एवं दुःख के हाथों का खिलौना बनना ही हमारी नियति नहीं है। हमारी नियति है दुःख एवं सुख के ऊपर उठना और उससे पूर्णतः मुक्त हो जाना। जब इस तरह के उच्च विचारों का प्रभात हममें उतरेगा, तब हम अपने जीवन-पथ में

सुधार करेंगे, जो अंततः हमें पूर्णता की प्राप्ति की ओर ले जाएगा।

लेकिन हम इतने लम्बे समय की प्रतीक्षा क्यों करें? तथा अपना पक्ष सुधारने के पहले बारम्बार प्रकृति के घात क्यों झेलें? जिसे हम महान् दबाओं के द्वारा हजारों जन्मों के बाद भी करने को बाध्य किये जाएँगे, उस कार्य को यहीं और इसी क्षण हम स्वेच्छापूर्वक क्यों नहीं शुरू कर दें?

अतः, यदि हम स्वेच्छया इसी क्षण अपनी साधना शुरू कर देते हैं, तो इससे एक महान अन्तर होगा। यह असंख्य दुःखों एवं सुखों के असंख्य अनुभवों से गुजरने से हमारी रक्षा करेगा। और यदि हम पूर्ण निष्ठावान् हैं तो हम स्वयं दिव्य आत्मा से निर्देश प्राप्त कर सकते हैं तथा इसी जीवन में इस संसार-सागर से पार जा सकते हैं।

माँ के प्रति

—श्रीमती शीला भुवालका
50/B, गरियाहाट रोड
कलकत्ता-700 019

समय के वक्ष पर,
तुम लिख दो कृपा कहानी एक।

सब जाने जननि जड़ गठरी,
बन जाती चेतन प्राणी एक।

कंधे का यह संभार बने अब,
गोदी का अतुलित श्रृंगार।

जन्म दिवस यह मना सकूँ मैं,
कृपा तुम्हारी अपरम्पार।

तुम परम शक्ति हे जननी,
दे दो एक किरण बस दिव्य वही।

कर सकूँ तुच्छ अवहेलित मैं,
इच्छाओं को सब इस मन की।

दे दो यही आशीष मुझे,
हे वरदायिनी - कल्याणी तुम।

माँ की महिमा हो अजर - अमर,
बस लिख दो यही कहानी तुम।

×

जयन्ती : १० नवम्बर पर

नानक जाणै सांचा सोई

रमाकान्त पाण्डेय

रात के पिछले पहर की अमृत-वेला है। भादो की अन्धेरिया है। बादल घिरे हैं। बिजली चमक रही है। निशान्त तक नानक का नित्य कीर्तन चल रहा है। भोर फूटने के करीब है। माँ डर रही है, पता नहीं इस भोले बालक की कैसी सनक है। जाकर टोकती है—'नन्हें, आज सोयेगा नहीं क्या ? सुदूर अरण्य से किसी आकाश देवता के मन्त्र की तरह पीपहे की टेर सुनायी दे रही है—पिउ···पिउ होऽ। नानक अध्यात्मका सूत्र पकड़ लेते हैं और चट उत्तर देते हैं—लेकिन माँ पपीहा तो 'पिउ-पिउ' की रट लगाये जा रहा है। मैं अपने प्रियतम को पुकारना कैसे बन्द करूँ ?' कई जन्मों का पुण्य संचित होने पर कोई बेटा अपनी मां के प्रश्नों का इतना मधुर उत्तर देता है। ऐसे ही विरल क्षण में नानक के मन में अनादि ब्रह्म की गीतात्मक अभिव्यक्ति का अन्तर्बोध उभरता है।

जब अरुधन्ती अन्तरिक्ष में देव-काव्य का अन्तिम छन्द लिखती है, तिमिर के नेपथ्य में शुक्ल तारे के पवित्र आलोक का उदात्त स्वर उठता है और हवा में पृथ्वी की पुण्य-गन्ध का उछास धुल जाता है, तब किसी ज्योति-पुरुष की चेतना एक अलौकिक अर्थ ग्रहण करती है। ऐसा पुरुष प्रकट सत्य का साक्षी होता है, मन की सात्विक गति का प्रतीक होता है और उसके प्राणों से मुक्ति का महामन्त्र ध्वनित होता है। नानक पानी की पुकार सुन लेते हैं, धूप की आहट पहचान लेते हैं और माटी में महावर की लाली भी देख लेते हैं। आसमान में सतरंगी आभा के फूल खिलते हैं और पलकों पर इन्द्रधनुष के बिम्ब ठहर जाते हैं, लेकिन नानक निवेदन करते हैं, सारी सृष्टि में उसी एक 'ओंकार' का सत्य है और सब कुछ केवल निरंजन की लीला है—'ऐसो नाम निरंजन होई।'

पपीहे की जो पुकार सोलह साल की उम्र में नानक के प्राणों में उतरी थी, वह चेतना की किसी अलक्ष्य गुहा में भटकती रही और फिर लगभग सोलह साल बाद विराट सत्ता का संगीत बनकर उनके कण्ठों से फूट निकली। उसी ने 'जपुजी' का रूप ले लिया। 'जपुजी' ब्रह्माण्ड के आदि स्वर का प्रतीक है। पहली बार अबूझ प्यास जगी थी, दूसरी बार अगाध तृप्ति मिली थी। प्रश्न नानक के मन में भी उठे थे—सो घर केहा, सो दर केहा (परमात्मा का घर कहाँ है और उस घर का द्वार किधर है) ? प्रश्न जितना निश्छल था, उत्तर उतने ही अद्भुत आनन्द से भरा था—'जहां अनहद नाद बजता है, जहां से प्रकृति के कण-कण को कंपन का संकेत मिलता है, जिसकी महिमा पानी, पवन और आग में झलकती है और जहाँ अमृत की फुहार झरती है, वही ब्रह्म का घर है. जहाँ धर्मराज ऊंघता है, इन्द्र विनम्र हो जाता है और चित्रगुप्त की बही गुम हो जाती है वही ब्रह्म-सदन का द्वार है।' नानक भूमा के सुख से अभिभूत होकर कहते हैं—'ओंकार ब्रह्म का घर है, नाद उसका द्वार है और जहां देवता गीत गाते हैं वहीं गोपुर है।'

गुरु नानक की चेतावनी है कि जिस परमात्मा के घर जाने के लिए ढेर सारे द्वार खुले हैं, वहां दुराग्रह की दीवार से सिर टकराना मनुष्यता नहीं है। एक ही अनन्त की अन्तर्ध्वनि है जो सबकी आत्मा में महाशून्य की सिहरन बनकर उभरती है। एक अनाहत स्वर है जो समष्टि के घट-घट में व्याप्त है, वह कभी टूटता नहीं है, लेकिन जल्दी सुनाई भी नहीं देता। इसी स्वर की लय नदी-झरनों के आर्द्र कल-कल में, लहरों की सलोनी उठान में, मेघों के तुमुल घोष में, मयूर के नृत्य में, मेढक के

आषाढ़ गीत में, पंछियों की चहक में और हवा की फागुनी सिसकार में कांपती रहती है। सबके भीतर ब्रह्म के अस्तित्व का गोपन राग बजता है। इस स्वर में सांसों के डूब जाने पर हृदय में आनन्द की बाढ़ आ जाती है और अस्मिता शुद्ध चेतना में विलीन हो जाती है। समष्टि में निजता के विसर्जन की वेला बड़ी मादक होती है। समपूर्ण समर्पण के भाव से भरा मन एक बार 'सब कुछ तेरा' कह दे तो एक ऐसी 'तारी' लग जाती है जैसे अणु-परमाणु से अपने ही अस्तित्व का संगीत उठ रहा हो। यही नानक के नाद-ब्रह्म की पहचान है।

नानक ईश्वर की उपासना को उत्सव बना लेते हैं और साधना को संगीत में ढाल देते हैं। वे अध्यात्म की एक ऐसी शैली विकसित करते हैं जिसमें निंस्पन्द भाव का आनन्द है, लेकिन कंपन नहीं है, मौन की रागिनी है लेकिन शब्दों का आलाप नहीं है, प्रकाश की पुलक है, लेकिन तमस की मूर्च्छा नहीं है, भक्ति का आवेग है, लेकिन भाषा का आडम्बर नहीं है। नानक पांडित्य के पाखंड से दूर रहते हैं। वे शास्त्रार्थ से ब्रह्म को सिद्ध करना नहीं चाहते। उनके सामने तर्क की तीव्र धार भोथर पड़ जाती है और उनकी सहजता के आगे शास्त्रीय विमर्श की शृंखला बिखर जाती है। तत्व-दर्शन के सारे जटिल प्रश्नों का उत्तर भी वे गीत में ही देते हैं। जब आदमी का मन सृष्टि-संगीत की लय में विलीन हो जाता है तब ब्रह्म की अनुभूति चेतना का यथार्थ बन जाती है। नाद-ब्रह्म की इतनी जीवन्त समीक्षा किसी सन्त के आचरण में नानक जैसी सहजता से उतरती नहीं देखी गयी। उनके सारे 'सबद कीर्तन' में ब्रह्म भाव गूंजता है— 'वह अमूल है, अनन्त है अकथ है। वह जगत की सम्पूर्ण व्यंजन का 'बादशाह' है और जब जैसा चाहे वैसा ही घटित होता है— जेवहु भावै, तेवड होई, नानक जाणै सांचा सोई।'

गीत या कीर्तन का ओंकार से नित्य आश्लेष का सम्बन्ध है। नानक के कीर्तन में परमात्मा स्वयं भक्त के द्वार पर चला जाता है, भक्ति और वेदान्त का अन्तर समाप्त हो जाता है और सारे धर्मों की समरसता के अनूठे रसायन का स्वाद मिलने लगता है। नानक ने सभी धर्मों की एकता को प्रश्न की तरह नहीं उत्तर की तरह, उचारण की तरह नहीं आचरण की तरह और मात्र प्रचार की तरह नहीं, सात्विक संस्कार की तरह ग्रहण किया था। कभी मन्दिर में पूजा कर ली, कभी मस्जिद में नमाज भी पढ़ ली और गाते रहे कि काबा-काशी उसी शाँहशाह के दरबार हैं। इसीलिए नानक को 'हिन्दू का गुरु और मुसलमान का पीर' कहा जाता है।

नानक का सारा जीवन शब्द-कीर्तन का काव्य है। उनकी हर सांस में नाद-कवित्त रस की मिठास भरी थी। जीवन के अन्तिम क्षणों में भी वे मृत्यु की श्यामल छवि से विभोर हो उठते हैं। मृत्यु-शैय्या पर पड़े नानक के अन्तिम शब्द भी कितने मोहक रहस्य के राग से भरे हैं—'वसन्त आ गया है। कलियां चटक रही हैं। पंछी चहक रहे हैं। कितनी भीनी-भीनी सुगन्धि है। कितना मीठा-मीठा कलरव है।'

●

सब कुछ भगवान् को समर्पित कर दो, स्वयं को भी समर्पित कर दो। ऐसा करने पर फिर तकलीफ नहीं रह जाएगी। तब तुम देख पाओगे कि सब कुछ उन्हीं की इच्छा से हो रहा है।

श्री श्रीरामकृष्ण देव

सहिष्णुता की प्रतिकृति : माँ सारदा

डॉ० प्रभा भार्गव
बीकानेर

भारतीय नारियाँ अन्य देशों के समान विलासिता की सामग्री नहीं अपितु भारतीय संस्कृति की डोर सम्भालने वाली है। इसीलिए उसे देवी या जगन्माता कहा जाता है। वे सदा विश्वास, श्रद्धा और त्याग की मूर्ति रही हैं माँ सारदा भी भारतीय संस्कृति की गौरव हैं। ज्ञान, कर्म, भक्ति, संयम, क्षमा, करुणा, स्नेह, त्याग आदि सभी सारदा में थे। वे सभी दृष्टि से एक परिपूर्ण आदर्श प्रस्तुत करती हैं लेकिन अपने समग्र गुण समूह को गोपनीयता और लज्जाशीलता के एक अमोघ आवरण से ढके रखती थीं। फिर भी उनसे प्रेरित होकर सभी अपना जीवन सुखमय बना सकते हैं।

आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में तनाव, बिखराव और उग्रता दिखाई देती है जिसका मुख्य कारण सहनशीलता का अभाव है। परिणामतः हम उदासीनता की ओर अग्रसर हो रहे हैं। माँ सारदा की मान्यता थी कि सहनशीलता एक बहुत बड़ा गुण है। "सहनशीलता हो तो शिव की भाँति, भयंकर जाड़े में भी लोग उनके सिर पर घड़ों जल डालते हैं पर क्या वे उससे कष्ट पाते हैं ? शिव का धैर्य असीम है।" श्री माँ की सहनशीलता भी असीम थी। वे स्वयं सहकर दूसरों को तृप्ति प्रदान करती थीं।

निर्धन परिवार में जन्म लेकर कठोर दारिद्र्य में उनका बाल्यकाल व्यतीत हुआ। बचपन से ही वे अपनी माता को गृहकार्य में सहायता देती थीं। अपने छोटे भाइयों की देखरेख करना मुख्य कार्य था। पिता को यथासमय सहायता प्रदान करती यथा खेत पर काम करने वालों को चबैना पहुँचाना, गर्दन तक पानी में उतरकर गायों के लिए घास काटना आदि। एक बार तो टिड्डियों ने सारी फसल नष्ट कर दी तो तत्काल ही उन्होंने खेत में जाकर धान एकत्रित किया। विवाह के पश्चात् दक्षिणेश्वर के नौबतखाने में जब पहली बार रहने आयीं तो आते जाते चौखट से प्रायः उनका सिर टकरा जाता था। एक दिन तो सच में सिर फूट ही गया। नववधू को देखने आयी महिलाओं ने कहा "हाय कैसी कोठरी में हमारी सीतालक्ष्मी हैं मानों वनवास है।" ऐसे संकरे स्थान में दीर्घकाल तक पिंजराबद्ध रहने के कारण उनके पैरों में गठिया हो गया और जीवन पर्यन्त कष्ट उठाना पड़ा।

दक्षिणेश्वर के जीवन के सारे दुःख कष्टों को जानकर भी स्वतः प्रेरित श्री रामकृष्ण परमहंस के समीप उपस्थित हुई परन्तु कभी-कभी दीर्घकाल तक भी उनके दर्शन नहीं हो पाते। मूर्तिमती सहिष्णुता की भाँति वे उनके दर्शन की प्रतीक्षा किया करती थी।

श्री माँ के पिता के स्वर्गवासी होने और वहाँ पर जाने से श्री रामकृष्ण और उनकी माता की सेवा शुश्रूषा में असुविधा होने लगी परन्तु वे दक्षिणेश्वर जल्दी ही लौट आयीं। वहाँ की तंग कोठरी में रहने, दूषित जल में स्नान आदि से कुछ दिनों बाद अस्वस्थ हो गयीं। पेचिस की शिकायत होने पर आपने ध्यान ही नहीं दिया। पति सेवा और पति परायणता ही उनका परम पुरुषार्थ था। चिकित्सा भी होती रही रोग कभी कम कभी ज्यादा हो जाता पर उनकी एकनिष्ठा सेवा-साधना एक समान चलती रही। एक वर्ष पश्चात् तो श्री रामकृष्ण ने उन्हें पुनः जयरामवाटी भेज दिया।

जीवन के उत्तरार्ध में श्री माँ को एक भिन्न प्रकार का उत्पीड़न सहना पड़ा। पारिवारिक परिस्थितियाँ जिस

वातावरण की सृष्टि करती थीं उसमें एकमात्र धीरता-स्वरूपिणी माँ के लिए शान्त रहकर गृहस्थी का काम करना सम्भव था। इसके अतिरिक्त नित्य आने वाले भक्तों की सेवा-सुविधा के लिए माँ को दिन रात परिश्रम करना पड़ता था। वे किसी भी समय उपस्थित हो जाते थे जिनकी इच्छा आंकाक्षाएँ भी विचित्र हुआ करती थी जिसकी पूर्ति के लिए माँ को अनेक कष्ट सहने पड़ते थे। इन असंख्य मंत्र दीक्षित शिष्यों से सन्तानों के जन्म जन्मतान्तरों के पाप माँ को अपने ऊपर लेने पड़ते थे जिससे उनके शरीर में ज्वाला सी होती थी तथा रोगग्रस्त हो जाती थीं। इन सभी शारीरिक एवं मानसिक कष्टों को सहर्ष सहनकर माँ ने अपनी ही उक्ति "सठा (सहिष्णुता) के समान गुण नहीं धर्म के समान धन नहीं" को चरितार्थ किया था।

परिवार के सदस्यों से भी माँ को न जाने कितने अत्याचार सहने पड़े थे। पगली भाभी को गलतफहमी थी कि श्री माँ ने दवादारू से लड़की राधू को अपने वश में कर लिया है। अतः वे नित्य ही उन्हें गालियां दिया करती थीं। एक दिन संध्या को माँ तरकारी काट रही थीं। अचानक ही पगली भाभी ने आकर कहा "तुमने ही तो राधू को अफीम खिलाकर पंगु बना अपने वश में कर लिया है। मेरे नाती को, मेरी लड़की को मेरे पास जाने भी नहीं देती।" श्री माँ ने उस समय निर्विकार रूप से कहा—"ले जा अपनी लड़की को। वह पड़ी हुई है, क्या मैंने छिपा रखा है।" भाभी तो झगड़ने आई थी माँ की उदानीसता ने तो उस पर नमक छिड़क दिया। गाली देते-देते उनकी उग्रता चरमसीमा पर पहुँच गयी और माँ को मारने के लिए जलती हुई लकड़ी लेकर आ गयीं लेकिन उसी समय वरदा महाराज ने श्री माँ को बचाया और भाभी को दरवाजे के बाहर निकाल दिया। श्री माँ के मुख से अचानक निकला "री पगली, तू क्या करने जा रही थी? तेरा वह हाथ गिर जायेगा।" लेकिन कुछ ही क्षणों के पश्चात् उन्हें पश्चाताप होने लगा कि मेरे मुख से कभी अभिशाप नहीं निकला और हम देखते हैं कि श्री माँ के देह त्याग के कुछ दिनों बाद गलित कुष्ठ से भाभी के हाथ की उंगलियाँ गिर पड़ी।

श्री माँ करुणा की मूर्ति थी। एकबार पगली भाभी के रिश्तेदार हेतु वे भोजन की व्यवस्था कर रही थीं कि इतने में बिल्ली ने गिलास का पानी पी लिया। भाभी ने तुरन्त ही पानी फेंक दिया। इस प्रकार तीन बार पानी डालने पर तीनों बार बिल्ली ने मुँह डाल दिया। बस पगली भाभी चिल्लाई कि आज तो उसे जान से मारकर ही रहूँगी। माँ ने कहा कि चैत के महिने में प्यास ज्यादा ही लगती है। भाभी एकदम बोली "रहने भी दो, मनुष्य पर ही कितनी दया है यह मैं जानती हूँ बिल्ली पर दया दिखाने चली है।" माँ गम्भीर हो उठी और बोली "मैं किसी पर दया न करूँ—ऐसा असम्भव है जिस पर दया न हो वह बड़ा अभागा है पर किस पर नहीं है यह तो मैं ढूंढ भी नहीं पाती।" वस्तुतः यह मानवी कण्ठ नहीं दैववाणी थी—पगली भी स्तब्ध होकर उन्हें देखने लगी। राधू द्वारा अफीम रखने की जिद करने पर माँ ने समझाना चाहा पर उसने क्रोध में आकर टोकरी में से एक बड़ा बैंगन उठाकर माँ की पीठ पर दे मारा परिणामतः श्री माँ की पीठ लाल सी फूल गयी। इतना ही नहीं राधू तो प्रायः उन्हें गालियाँ दिया करती थी कि "तू मर जा तेरे मुँह में आग लगे।" हम जानते हैं कि ठाकुर ने कभी उन्हें जरा सा भी कठोर शब्द नहीं कहा। वे तो अपने को सर्वदा श्री रामकृष्ण के चरणों की आश्रिता ही समझती थीं किन्तु पारिवारिक व्यवहार या जनसाधारण के साथ बातचीत में उनका देवीत्व एकाएक प्रकट हो जाता था। काशी में पगली भाभी सारी रात गाली दिया करती थी "ननदजी मर जाय, ननदजी मर जाय।" सुबह एक दिन माँ ने कह ही दिया कि छोटी बहू नहीं जानती कि मैं मृत्युंजय हूँ।

भाभी और भतीजी के अतिरिक्त भाइयों के संसार में माँ को कठोर परिश्रम करना पड़ता था। वे हांडी-हांडी भर धान सिझाती, चावल तैयार करती, रसोई बनाना, बरतन मलना, पानी खींचना, बच्चों की देखभाल करना दिनभर काम में व्यस्त रहतीं। वे रुपयों के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहते। दिन रात पैसा-पैसा की रट लगाये रखते, ज्ञान भक्ति पाने की भावना ही नहीं थी।

प्रायः भाइयों के बीच छोटी-छोटी बातों को लेकर झगड़ा और हाथापाई की नौबत आ जाती थी और माँ बीच बचाव करतीं। वे कभी-कभी हँसते-हँसते कहतीं— "महामाया की कैसी विचित्र लीला है अनन्त पृथ्वी पड़ी है और यह स्थान भी पड़ा रह जायेगा पर जीव यह समझ ही नहीं पाता।"

इसके अतिरिक्त कामारपुकुर का कठोर दारिद्र्य और निःसंग जीवन एकदम असहनीय था। सत्संग तो होता ही नहीं था। नैतिक और आध्यात्मिक वातावरण का पूर्णतः अभाव था। ऐसे ग्रामीण और प्रतिकूल पारिवारिक वातावरण तथा भावगत विषमताओं में वे कभी-कभी घबड़ा जाती थीं लेकिन ठाकुर के आदेश को स्मरण कर वे पतिगृह में धर्म रखे हुये थीं। अपनी दुःखदीनता की बातें किसी को न कहतीं। चिरकल्याणमय श्रीराम-कृष्ण के जीवकल्याण मंत्र का अवलम्बन कर राघू रूप योगमाया का आश्रय ले वे अपने अप्राकृत मन को आवृत्त करके अमृतमयी प्रशान्ति की भांति सांसारिक जगत में अवस्थान करती थीं। माया के परदे की आड़ में रहकर उन्होंने मानवीरूप में जो आदर्श प्रस्तुत किया वह विश्व की समस्त नारी जगत का प्रेरणास्रोत है। अन्ततः सार्वजनीन मंगल साधन के लिए उनके हृदय में सर्वदा मंगलमयी दीपशिखा प्रज्वलित रहतीं थी।

विवेक शिखा—स्थायी कोष के दाता

११.	श्री रामलायक सिंह	—	सम्होता (छपरा)	२५ रुपये
१२.	डा० एस पी० भार्गव	—	अजमेर	१०० रुपये
१३.	श्री राम छविला सिंह	—	मुजफ्फरपुर	२५ रुपये
१४.	श्री निखिल शिवहरे	—	दमोह (म० प्र०)	१५१ रुपये
१५.	श्रीमती उषारानी कर्ण	—	सुरसंड, (सीतामढ़ी)	१०० रुपये
१६.	श्री पी० सी० सरकार	—	नरेन्द्रपुर (प० बं०)	१०० रुपये
१७.	श्रीमती मीरा मित्रा	—	इलाहाबाद	२०१ रुपये
१८.	श्री गोपाल शं० तायवाडे	—	अमरावती (महाराष्ट्र)	१०० रुपये
१९.	श्री महादेव शि० गुंडावार	—	भद्रावती (महाराष्ट्र)	५० रुपये
२०.	श्री राजीव कुमार राज	—	सैदपुर, पटना-४	३१ रुपये
२१.	श्री राज सिंह	—	गाजियाबाद (उ० प्र०)	५० रुपये
२२.	श्री चन्द्र मोहन	—	टुण्डला (उ० प्र०)	९८५ रुपये
२३.	श्री के० अनूप	—	अरुणाचल प्रदेश	२० रुपये
२४.	श्री शतदल साधु खान	—	सोनारपुर(पश्चिम बंगाल)	१०० रुपये
२५.	श्री ए० जी० डगाँवकर	—	यवतमाल	५१ रुपये
२६.	श्रीमती उषा गुप्ता	—	रायपुर (म० प्र०)	२०० रुपये

निवेदन—१ स्थायी कोष के लिए दान सम्पादकीय पते पर भेजने की कृपा करें।
२. चेक या ड्राफ्ट "विवेक शिखा" के नाम से भेजें।

गुरुत्व की तीन शर्तें

स्वामी शशांकानन्द
बेलुड़ मठ

स्वामी विवेकानन्दजी ने सद्‌गुरु के सम्बन्ध में तीन मुख्य शर्तों का उल्लेख किया है। इन तीन शर्तों को पूर्ण किए बिना सद्‌गुरु नहीं हो सकते।

पहली शर्त

स्वामीजी ने कहा, "गुरु के सम्बन्ध में यह जान लेना आवश्यक है कि उन्हें धर्मशास्त्रों का मर्म ज्ञात हो। जो गुरु शब्दाडम्बर के चक्कर में पड़ जाते हैं, जिनका मन शब्दों की शक्ति में बह जाता है, वे भीतर का मर्म खो बैठते हैं। शास्त्रों की वास्तविक आत्मा के ज्ञान से ही सच्चे गुरु का निर्माण होता है। शास्त्रों का शब्दजाल एक सघन वन के सदृश है, जिसमें मनुष्य का मन भटक जाता है और वह रास्ता ढूंढे नहीं पाता।"

(वि० सा० IV-२१)

श्रीमद् शङ्कराचार्य जी विवेक चूड़ामणि में कहते हैं कि "शब्दजालं महारण्यं चित्तभ्रमणकारणम्" अर्थात् शब्दजाल तो चित्त को भटकाने वाला एक महान वन है। असली बात तो शास्त्र के तत्व को जानना है। "अविज्ञाते परे तत्त्वे शास्त्राधीतिस्तु निष्फला।" अर्थात् परम् तत्व यदि न जाना तो शास्त्राध्ययन व्यर्थ ही है। वे पुनः कहते हैं कि तत्त्व न जानने से शास्त्रज्ञान, वाणी की कुशलता, व्याख्यान-कुशलता सभी भोग का ही कारण हैं।

वाग्वैखरी शब्द झरी शास्त्रव्याख्यान कौशलम्।
वैदुष्यं विदुषां तद्वद्भुक्तये न तु मुक्तये॥

— जिस प्रकार वीणा का रूप-लावण्य तथा तन्त्री को बजाने का सुंदर ढंग मनुष्यों के मनोरञ्जन का ही कारण होता है, उससे कुछ साम्राज्य की प्राप्ति नहीं हो जाती; उसी प्रकार विद्वानों की वाणी की कुशलता, शब्दों की धारावाहिकता, शास्त्र-व्याख्यान की कुशलता और विद्वत्ता भोग ही का कारण हो सकती है, मोक्ष का नहीं।

अर्थात् सद्‌गुरु का केवल श्रोत्रिय होना ही यथेष्ट नहीं है, उन्हें ब्रह्मनिष्ठ भी होना चाहिए। अर्थात् जिन्होंने शास्त्रों के मर्म को जान लिया है एवं तदनुसार आचरण करके अपनी आत्मा को ब्रह्म में प्रतिष्ठित कर लिया है वे ही सद्‌गुरु होने का दावा कर सकते हैं।

रामचरित मानस में भी गोस्वामी जी उत्तरकाण्ड में कहते हैं।

श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई।
छूट न अधिक अधिक अरूआई।

—"वेद और पुराणादि (धर्मग्रंथों) ने बहुत से उपाय बतलाये हैं, पर यह ग्रंथि छूटती नहीं वरण अधिकाधिक उलझ जाती है।"

श्री रामकृष्ण देव कहते हैं पेड़ गिनने से क्या लाभ, आम खाने चाहिए। ईश्वर लाभ ही जीवन का उद्देश्य है। ईश्वर लाभ होने पर शास्त्रों की आवश्यकता नहीं रहती अतः ईश्वर प्राप्ति ही शास्त्रों का मर्म है। जिसने ईश्वर प्राप्ति कर ली वही सद्‌गुरु होने योग्य है।

रामचरित मानस में गोस्वामी जी कहते हैं, "रामहि केवल प्रेम पिआरा। जानि लेहु सो जाननिहारा।" वही ज्ञानी है जिसने यह जान लिया कि एक मात्र 'राम' ही प्रेम की वस्तु हैं और कुछ भी नहीं। उत्तर काण्ड में काकभुषुण्डि जी गरुड़ जी को धर्मशास्त्रों का मर्म समझाते हुए कहते हैं—

श्रुति सिद्धान्त इहइ उरगारी।
राम भजिअ सब काज बिसारी।

– श्रुतियों का सिद्धान्त यह है कि सब काम भुला कर (छोड़कर) श्रीराम जी का भजन करना चाहिए।

श्रुति पुरान सब ग्रन्थ कहाहीं
रघुपति भगति बिना सुख नाहीं॥

—श्रुति पुराण और सभी ग्रंथ कहते हैं कि श्री रघुनाथ जी की भक्ति के बिना सुख नहीं है।

फिर गोस्वामीजी अपना मत देते हुए कहते हैं,

विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि में।
हरिं नरा भजन्ति येऽति दुस्तरं तरन्ति ते॥

—मैं आपसे भली भांति निश्चित किया हुआ सिद्धान्त कहता हूँ – मेरे वचन अन्यथा (मिथ्या) नहीं है कि जो मनुष्य हरि भजते हैं, वे अत्यन्त दुस्तर संसार सागर को (सहज ही) पार कर जाते हैं।

अतः गोस्वामी जी के मतानुसार भवसागर से पार होना ही सब धर्म शास्त्रों का प्रयोजन और जीवन का लक्ष्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति हरि के भजन से ही सम्भव है। उनके मत में यह निश्चित सिद्धान्त है। तो गोस्वामी जी के मत में धर्मग्रन्थों के मर्मज्ञ तो उनको कह सकते हैं जिन्होंने हरिभजन को ही सत्य माना है और हरिभजन के द्वारा भवसागर पार कर लिया है तथा सारे जगत को स्वप्नवत् मिथ्या माना है।

उमा कहहुँ मैं अनुभव अपना
सत हरिभजनं जगत सब सपना॥

—हे उमा। मैं अपना अनुभव कहता हूँ कि केवल हरि का भजन ही सत्य है (सब धर्मग्रंथों का निचोड़ है) और यह समस्त जगत मिथ्या है।

दूसरी शर्त

स्वामी विवेकानन्दजी कहते हैं कि, "गुरु के लिए दूसरी बात आवश्यक है—निष्पापता। गुरु के सम्बन्ध में हमें यह जान लेना होगा कि उनका चरित्र कैसा है; और तब फिर देखना होगा कि वे कहते क्या हैं।··· अध्यात्म विज्ञानों में अपवित्र आत्मा में लेशमात्र भी धर्म का प्रकाश रह सकना असंभव है। एक अपवित्र व्यक्ति हमें क्या धर्म सिखाएगा? आध्यात्मिक सत्य की उपलब्धि करने और दूसरों में उसका संचार करने का एक मात्र उपाय है—हृदय और मन की पवित्रता।··· उन्हें पूर्ण रूप से शुद्ध होना चाहिए, तभी उनके शब्दों का मूल्य होगा, क्योंकि केवल तभी वे सच्चे संचारक हो सकते हैं। यदि स्वयं उनमें आध्यात्मिक शक्ति न हो तो वे संचार ही क्या करेंगे?" (वि० सा० IV-२२-२३ पृष्ठ)

अर्थात् पाप रहित होना अत्यन्त आवश्यक है। स्वामीजी के अनुसार पापी तो वही है जो स्वार्थी है और जो स्वार्थी है वही अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए झूठ, कपट, छल का आश्रय लेता है। अतः ऐसा मन कभी ईश्वर प्राप्ति नहीं कर सकता। पापरहित तो वह है जो सदा सर्वदा दूसरों के कल्याण की भावना रखे। वह निःस्वार्थी होता है अतः उसे झूठ, कपट, छल का प्रयोजन ही नहीं। वह निर्मल मन वाला है। भगवान राम कहते हैं:

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा।

—मुझे कपट, छल आदि नहीं सुहाता। अतः जो निर्मल मन वाला है, वही मुझे प्राप्त करता है।

ईसा मसीह ने भी इस सिद्धान्त पर बहुत जोर दिया है "Blessed are the pure in heart for they shall see God." पवित्रात्माएँ धन्य हैं क्योंकि वे ईश्वर को देख सकेंगी।

जो अपवित्रात्माएँ हैं उन्हें ईश्वर दर्शन तो दूर की बात ईश्वर सम्बन्धी चर्चा भी नहीं सुहाती। वे तो ईश्वर प्राप्ति कर ही नहीं सकते। रामचरितमानस में कहते हैं।

अतिखल जे बिषई बग कागा।
एहि सर निकट न जाहिं अभागा।

—जो अतिदुष्ट और विषयी हैं वे अभागे बगुले कौए हैं जो इस सरोवर के समीप नहीं जाते।

संबुक भेक सेवार समाना।
इहाँ न विषय कथा रस नाना॥

क्योंकि यहाँ (आध्यात्मिक जगत में--रामचरित मानस सरोवर में) घोंघे, मेढक और सेवार के समान विषय रस की नाना कथाएँ नहीं हैं।

यदि कहें कि यदि दोनों रस– विषय रस और आध्यात्मिक रस मिलाकर रखें तो सम्भवतः सभी आना चाहेंगे तो गोस्वामी जी कहते हैं,

जहाँ काम तहाँ राम नहीं जहाँ राम नहीं काम।
तुलसी कबहुँक हो सकै रवि रजनी इक ठाम॥

अर्थात् जहाँ विषय कामनाएँ हैं वे मन को मलीन करके रखती हैं और मलीन मन में ईश्वर का निवास नहीं हो सकता। तुलसीदास जी कहते हैं कि जिस प्रकार सूर्य और रात (अंधकार) दोनों एक जगह नहीं रह सकते; उसी प्रकार 'राम' और 'काम' एक जगह एक साथ नहीं रहते। अतः

सकल कामनाहीन जे राम भगति रस लीन।
नाम सुप्रेम पियूष हृद तिन्हहुँ किए मन मीन॥

जो सब प्रकार की कामनाओं से रहित होकर राम भक्ति के रस में लीन रहते हैं, उन्होंने नाम के सुन्दर प्रेमरूपी अमृत सरोवर में अपने मन को मछली बना रखा है।

कामगन्ध—शून्य व्यक्ति ही ब्रह्मानन्द या रामानन्द सागर में गोते लगाते हुए आनन्दमय हो जाते हैं, केवल वे ही दूसरों को कामगन्ध शून्य कराकर ब्रह्मानन्द का अनुभव करा सकते हैं। अर्थात् गुरु होने के लिए काम गन्धशून्य होना—निष्पाप होना अनिवार्य है।

तीसरी शर्त

स्वामीजी ने कहा है कि, "तीसरी बात आवश्यक है गुरु को धन, नाम या यश सम्बन्धी स्वार्थ-सिद्धि के हेतु धर्म-शिक्षा नहीं देनी चाहिए। उनके कार्य तो केवल प्रेम से, सारी मानव जाति के प्रति विशुद्ध प्रेम से ही प्रेरित हों।

...भगवान प्रेम स्वरूप है, और जिन्होंने इस तत्व की उपलब्धि कर ली है, वे ही मनुष्य को शुद्ध सत्व होने और ईश्वर को जानने की शिक्षा दे सकते हैं।

(वि० सा० IV-पृ० २३)

जिस प्रकार विद्युत तार में जंग लग जाए या अन्य कोई बाधा (resistance) आ जाय तो विद्युत प्रवाह रुक जाता है या न्यूनतम हो जाता है; उसी प्रकार धन, नाम और यश यदि गुरु और शिष्य के बीच उपस्थित हों तो धर्मशक्ति का प्रवाह भी रुक जाता है। धन नाम और यश धर्मशक्ति के प्रवाह में जंग या resistance का कार्य करते हैं। अर्थात् जो धन के लोभ से धर्म शिक्षा देता है, वह तो धन लोभ के कारण नरकगामी होता है।

रामचरितमानस में गोस्वामी जी कहते हैं,

हरइ शिष्य धन सोक न हरई।
सो गुर घोर नरक महुँ परई॥

—जो शिष्य से धन तो लेता है पर धर्म प्रवाह नहीं कर पाता, उसके शोक मोह का निवारण नहीं कर सकता वह तो नरक में पड़ता है।

राज्य के लोभ और शत्रुता के कारण या चक्रवर्ती राजा होने की नाम यश की लालसा से कपट मुनि राजा प्रताप भानु को धर्मोपदेश करने लगा।

करम धरम इतिहास अनेका।
करई निरूपन बिरति बिबेका॥

—कर्म धर्म और अनेक प्रकार के इतिहास कहकर वह (कपटी मुनि) वैराग्य और विवेक का निरूपण करने लगा।

ऐसे कपटी मुनि के उपदेश से तो शिष्य का भी अकल्याण ही होता है।

सद्गुरु की इस तीसरी शर्त की पूर्ति करने वाला चरित्र तो हमें ऋषिश्रेष्ठ सुतीक्षण जी का मिलता है। उन्हें तो संसार की किसी वस्तु की कामना ही नहीं। प्रभु स्वयं वर देने आ जाएँ तो भी मन में कुछ माँगने की इच्छा ही नहीं होती। वे तो सर्वदा भगवद् प्रेम में विभोर रहते थे।

निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी
कहि न जाइ सो दसा भवानी॥

भगवान शंकर कहते हैं कि हे भवानी। ज्ञानी मुनि प्रेम में पूर्णरूप से निमग्न हैं। उनकी वह दशा कही नहीं जाती।

दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा।
को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा॥
कबहुँक फिरि पाछें पुनि जाई।
कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई॥

—'उन्हें दिशा-विदिशा और रास्ता, कुछ भी नहीं सूझ रहा है। मैं कौन हूँ? और कहाँ जा रहा हूँ?' यह भी नहीं जानते। वे कभी पीछे घूमकर फिर आगे चलने लगते हैं और कभी गुण गा-गा कर नाचने लगते है।

"अविरल प्रेम भगति मुनि पाई।"

—मुनि ने प्रगाढ़ भक्ति प्राप्त कर ली।

जब भगवान श्रीराम ने उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर वर माँगने के लिए कहा तो सुतीक्ष्णजी ने अपने मन को टटोला तो उन्हें यह समझ में न आया कि क्या माँगना चाहिए अर्थात् कोई चाह ही उनके मन में नहीं थी। धन, नाम, यश यहाँ तक कि मोक्ष की भी चाह उन्हें नहीं थी। सारे विश्व की वस्तुएँ इहलोक और परलोक के प्रलोभन उन्हें तुच्छ प्रतीत होते थे। अतः उन्होंने कहा—

तुम्हहि नीक लागै रघुराई।
सो मोहि देहु दास सुखदाई॥
अविरल भगति विरति बिग्याना।
होहु सकल गुन ग्यान निधाना॥

हे रघुनाथजी! दासों को सुख देने वाले! आपको जो अच्छा लगे मुझे वही दीजिए। (श्री रामचन्द्रजी ने कहा—हे मुनि!) तुम प्रगाढ़ भक्ति, वैराग्य, विज्ञान और समस्त गुणों और ज्ञान के निधान हो जाओ।

सुतीक्ष्णजी ने देखा कि प्रभु ने जो वरदान दिया वह तो मुझे मिल ही गया। परन्तु इन सब में तो नाम और यश की प्राप्ति की सम्भावना है। अतः उन्हें यह रुचिकर न लगा। वे बोले—

प्रभु जो दीन्ह सो बरु मैं पावा।
अब सो देहु मोहि जो भावा॥

अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम।
मम हिय गगन इंदु इव बसहु सदा निह काम॥

—हे प्रभो! श्रीराम जी के छोटे भाई लक्ष्मण जी और जानकी जी सहित धनुषवाणधारी आप निष्काम (स्थिर होकर) मेरे हृदयरूपी आकाश में चन्द्रमा की भाँति सदा निवास कीजिए।

इस प्रकार के मन वाला व्यक्ति ही सद्गुरु होने की तीसरी शर्त पूरी कर सकता है।

स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं, "जब देखो कि तुम्हारे गुरु में ये सब लक्षण मौजूद हैं, तो फिर तुम्हें कोई आशंका नहीं। अन्यथा उनसे शिक्षा ग्रहण करना ठीक नहीं, क्योंकि तब साधुभाव संचारित होने के बदले असाधु भाव के संचारित होने का बड़ा भय रहता है। केवल वही जो शास्त्रज्ञ, निष्पाप, कामगन्धहीन और श्रेष्ठ ब्रह्मविद् है सच्चा गुरु है।" (वि० सा० IV-२३)

विवेक चूड़ामणि में श्रीमद्शंकराचार्य जी कहते हैं:

श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहतो यो ब्रह्मवित्तमः॥

विवेक चूड़ामणि ३४॥

ब्रह्मण्युपरतः शान्तो निरिन्धन इवानलः।
अहैतुकदयासिन्धुर्बन्धुरानमतां सताम्॥३५॥
तमाराध्य गुरुं भक्त्या प्रह्वप्रश्रयसेवनैः।
प्रसन्नं तमनुप्राप्य पृच्छेज्ज्ञातव्यमात्मनः॥३६॥

'जो श्रोत्रिय हों, निष्पाप हों, कामनाओं से शून्य हों, ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ हों, ईंधन रहित अग्नि के समान शान्त हो, अकारण दयासिन्धु हों और शरणापन्न सज्जनों के हितैषी हों उन गुरुदेव की विनीत और विनम्र सेवा से भक्तिपूर्वक आराधना करके, उनके प्रसन्न होने पर उनके निकट जाकर अपना ज्ञातव्य (मोक्ष के उपाय या साधन) पूछे अर्थात् शिष्य को पूछना चाहिए।

धर्म और विज्ञान

प्रेम सिंह

(मारीशस-स्थित रामकृष्ण मिशन के केन्द्र ने अपने भव्य मन्दिर में भगवान् श्रीरामकृष्णदेव की संगमर्मर-प्रतिमा की प्रतिष्ठा के उपलक्ष में ११ से १९ अप्रैल १९८१ तक जो नवदिवसीय उत्सव-समारोह का आयोजन किया था, उसमें १७ अप्रैल को 'धर्म और विज्ञान' विषय पर एक रोचक और शिक्षाप्रद परिसंवाद रखा गया था। इस परिसंवाद की अध्यक्षता करते हुए मारीशस-स्थित भारत के कार्यकारी हाई कमिश्नर श्री प्रेम सिंह ने जो भाषण दिया था, वही प्रस्तुत लेख के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है।—स०)

आज यहाँ दो शब्द कहते हुए मुझे संकोच और गौरव का बोध हो रहा है। धर्मक्षेत्र के इतने अधिकारी विद्वानों के बीच बोलना जहाँ मुझे सहज रूप से संकुचित कर रहा है, वहाँ इस बात का गौरव भी हो रहा है कि इस पवित्र और महत्त्वपूर्ण अवसर पर मैं आप सबके बीच हूँ। श्री रामकृष्ण की मूर्ति की स्थापना का योग हम सबके लिए बड़ा उल्लासकारी है। उन्होंने आधुनिक हिन्दू धर्म को मानवीयता और करुणा से आप्लावित किया। मतवादों के नाम पर झगड़नेवाले मानवसमुदाय को 'सब धर्मों की आत्मा एक हैं, प्रभु को हर समुदाय का सदस्य अपने अपने आचार-अनुष्ठान का पालन करते हुए पा सकता है' का अनुभूत सन्देश दिया। गीता में दिये गये भगवान् कृष्ण के आप्त सन्देश का उन्होंने अपने जीवन में साक्षात् किया था। हिन्दू, ईसाई, इसलाम सभी उपासना-पद्धतियों से उन्होंने परम ब्रह्म की सत्ता की अनुभूति की थी। ऐसे महापुरुष की याद में आयोजित यह समारोह हमारे भौतिक संसाधनों की उपलब्धि में व्यस्त सांसारिक जीवन को अवश्य ही आध्यात्मिकता का स्पर्श देगा।

आज की चर्चा का विषय है धर्म और विज्ञान। अनेक अधिकारी पुरुष इस विषय पर अपने सारगर्भित विचार व्यक्त कर चुके हैं। मेरा यह स्पष्ट मत है कि धर्म और विज्ञान दो परस्पर-विरोधी और कभी न मिलनेवाले सूत्र नहीं हैं। न ही ये एक दूसरे की बखिया उधेड़नेवाले विचार-बोध हैं। ये अविरोधी और एक दूसरे के सहयोगी हैं। धर्म और विज्ञान अपने अपने मार्ग और पद्धति से एक ही आदि सत्ता तक पहुँचने में सतत प्रयत्नरत हैं। धर्म का ब्रह्म और विज्ञान की ऊर्जा एक दूसरे के पास पहुँच रहे हैं। जबसे आइंस्टीन ने पदार्थ को ऊर्जा का परिवर्तित रूप घोषित किया, तबसे विज्ञान की सारी भौतिक और जड़वादी मान्यताएँ ध्वस्त हो गयीं। वैज्ञानिकों ने सारे जगत् को ऊर्जा का भासित रूप स्वीकार किया।

धर्म और विज्ञान का परस्पर-विरोधी स्वरूप पश्चिम की देन है। १८वीं शदी के अन्तिम चरण में जब विज्ञान अपने आधुनिक रूप में जन्म ले रहा था, तब पश्चिम का धर्म अपनी पुस्तकीय प्रतिबद्धता के कारण आतंकित हो उठा था। उसने अपने सत्य को ढहने से बचाने के लिए वैज्ञानिकों और विचारकों को फाँसी पर चढ़ाना शुरू कर दिया। अपनी लाख दमनकारी कोशिशों के बावजूद पश्चिम का धर्म अपने सत्य को विज्ञान की खोज से उभरे शाश्वत सत्य के सामने टिका नहीं सका। लेकिन पूरब में ऐसा कभी नहीं हुआ। भारतीय मनीषी ने सत्य के हर उद्घाटन को पुराने सत्य की पराजय नहीं समृद्धि माना और अज्ञात की हर खोज को ब्रह्म का साक्षात्कार कहा। इसीलिए आर्यभट्ट, वराहमिहिर, रोहिणी, चरक, सुश्रुत आदि विभिन्न क्षेत्रों के वैज्ञानिक ऋषि कहलाये। मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता का यह कैसा हृदयग्राही उदा-

हरण है कि पृथ्वी घूमती है कहनेवाला गैलेलियो सूली पर चढ़ा दिया गया, लेकिन अणु को ब्रह्म का पर्याय मानने वाले कणाद को ऋषि का दर्जा दिया गया।

मैंने शुरू में कहा था कि धर्म और विज्ञान अविरोधी और परस्पर-सहयोगी हैं। जब मैं धर्म की बात करता हूँ, तो उसका अर्थ 'रिलीजन' से बिल्कुल अलग समझना चाहिए। 'रिलीजन' जिसे भारतीय अध्यात्म-शब्दावली में सम्प्रदाय या मत कहते हैं, एक पुस्तक और एक पैगम्बर से प्रतिबद्ध होता है, उससे हटकर सोचना उसके अनुयायियों को पथभ्रष्ट या विद्रोही बनाता है; लेकिन धर्म के सामने ऐसी कोई रुकावट नहीं होती, वह मूल्यों की प्रतिबद्धता का हामी हैं। इन मूल्यों की निर्मित और स्थापना में अनेक पुस्तकों और पैगम्बरों का योगदान हो सकता है, किन्तु इनका कथन अन्तिम नहीं होता है। आनेवाली पीढ़ियाँ इन मूल्यों को और समृद्ध तथा संशोधित करने को स्वतंत्र होती हैं। इसलिए भारतीय मनीषियों ने धर्म की व्याख्या करते हुए उसे जीवन-मूल्यों से जोड़ा, पूजा-पद्धतियों या कर्मकाण्डों से नहीं।

आखिर विज्ञान की अन्तिम खोज क्या है? उन शाश्वत एवं आधारभूत नियमों का पता लगाना, जिनसे इस सृष्टि का या वैज्ञानिक अवलोकनों से जानकारी में आनेवाली अन्य सृष्टि का परिचालन हो रहा है. धारणा हो रही है। इन नियमों को जानकर विज्ञान तदनुरूप अपने सिद्धान्तों की रचना करता है। न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण और गति का सिद्धान्त, जेम्स वाट की रेलगाड़ी और राइट ब्रदर्स की विमान की उड़ान तथा आइंस्टीन का सापेक्षवाद अनादिकाल से चले आ रहे प्राकृतिक नियमों की जानकारी मात्र है और इन्हीं से अनेक रचनाएँ हुईं, जिनसे आज मानव समुदाय लाभ उठा रहा है। और धर्म? शास्त्रों ने कहा है कि "धारणात् धर्मम् इत्याहुः, जिससे धारणा होती है, वही धर्म है। इस सृष्टि की धारणा जिन नियमों पर आधारित है, उसे धर्म कहते हैं। प्रकृति का अपना धर्म है, मानव का अपना धर्म है। इतना ही नहीं तो भगवान् का भी अपना धर्म है। इस धर्म अर्थात् प्राकृतिक नियमों के विपरीत चलने से पतन होता है, सृष्टि का सन्तुलन बिगड़ता है। इसीलिए शास्त्रों ने धर्म की और सहज व्याख्या करते हुए कहा कि "यतो अभ्युदयनिःश्रेयस-सिद्धिः स धर्मः"— जिससे मनुष्य को सांसारिक और आध्यात्मिक जीवन में सिद्धि मिले, वही धर्म है। ये दोनों सिद्धियाँ सृष्टि में निहित मूलभूत नियमों के आचरण से ही प्राप्त होंगी। इसके विपरीत जाने से सर्वनाश होगा यह धर्म का विधान है।

सृष्टि में निहित शाश्वत नियमों से अपनी तकनीक विकसित करनेवाला विज्ञान आज स्वयं धर्मच्युत हो गया है। उसने ऊर्जा का उपयोग दैत्याकार उद्योग खड़ा करने के लिए किया, लेकिन उसके कचरे की महामारी पर उसका ध्यान बिल्कुल नहीं गया। इसीलिए आज प्रदूषण की महामारी संसार में फैल रही है। लेकिन प्रकृति में यह महामारी नहीं है। आदमी के जहर कार्बन-डाइआक्साइड को पेड़ लेते हैं और अपने जहर आक्सीजन को आदमी को दे देते हैं। एक का जहर दूसरे के लिए अमृत, यह है प्रकृति की सुव्यवस्थित रचना। विज्ञान प्राकृतिक नियमों का शोषण करने में तो समर्थ हुआ है, लेकिन उन्हें सन्तुलन और स्वस्थ जीवन देने में वह अपने को निरुपाय पा रहा है। इसीलिए आज आवश्यक है कि विज्ञान को धर्म से जोड़ा जाय, उसे आधारभूत शाश्वत नियमों के विरुद्ध न जाने दिया जाय।

विज्ञान और धर्म दोनों का एक ही घोष वाक्य है— सत्य की खोज। रास्ते अलग हैं, किन्तु लक्ष्य एक है। विज्ञान सत्य को चर्मचक्षुओं से तर्क के आधार पर देखने में विश्वास करता है। वह किसी घटना या स्थिति में तब तक विश्वास नहीं करता, जबतक उसके होने के लिए उसके पास तर्क का सुस्पष्ट प्रमाण न हो। धर्म भी प्रमाणों और तर्कों पर विश्वास करता है, किन्तु वह उपकरणीय या चाक्षुष प्रमाणों पर ही आश्रित नहीं होता। वह अलौकिक शक्तियों पर भी विश्वास करता है, जिनकी विज्ञान पहले खिल्ली उड़ाता था, लेकिन अब परामनोविज्ञान और टेलीपैथी आदि के विकास के कारण उन्हें वैज्ञानिक मानने को बाध्य हो रहा है। धर्म तो सत्य का इतना बड़ा पक्षधर है कि उसने स्पष्ट घोषणा की है

कि सत्य ब्रह्म है। किसी चीज को उसके वास्तविक स्वरूप में जान लेना ही ब्रह्म है। यही बोध धर्म का चरम लक्ष्य है।

विज्ञान स्वभावतः विश्लेषण में विश्वास करता है, इसीलिए आज वह नाना प्रकार की विसंगतियों का शिकार है। वस्तु का अन्तर्तम फाड़कर उसके चरम सत्य में झाँकने में तो उसकी बड़ी ललक है, किन्तु उस फटने की क्रिया में प्राकृतिक नियमों में कितना असन्तुलन हो जाता है और उनकी जटिलता कितनी बढ़ जाती है उसकी जानकारी रखते हुए भी उसका निदान अपनी खोज की मस्ती में विज्ञान नहीं करता। इसी कारण 'आफटर इफैक्ट' की बीमारी विज्ञान में तेजी से बढ़ रही है। एक से एक बढ़कर संहार करने वाले बम तो बन गये हैं, लेकिन उनके संहारक मारक प्रभाव को नष्ट करनेवाले बम कहाँ हैं, जो सृष्टि को असन्तुलन और नियमहीनता के सर्वनाश से बचा सकें? दूसरी ओर, धर्म विश्लेषण नहीं, सामंजस्य पर बल देता है। जब धर्म ने घोषित किया कि अग्नि को अकारण जलाकर रखना, पेड़ काटना, नदी के जल को दूषित करना जघन्य पाप है, तो यह सृष्टि की रचना को स्वस्थ रखने का सामंजस्यपूर्ण उपाय है। इसी प्रकार जब शास्त्रों ने कहा कि धैर्य, क्षमा चोरी न करना, शुद्धता, इन्द्रियनिग्रह, बुद्धिमत्ता, विद्या, सत्य और क्रोध न करना, मानवधर्म के दस लक्षण हैं, तो इसमें भी सामंजस्य का बोध है। इन नियमों का पालन करने से मानव समाज बिना 'आफटर इफैक्ट' पैदा किये उदात्त जीवन जी सकेगा। इसी से वह चरम सत्य तक पहुँच सकेगा। शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा से युक्त मनुष्य के जीवन में इन्हीं नियमों के आचरण से तनाव-हीन सामंजस्य पैदा हो सकेगा।

विज्ञान और धर्म दोनों की सत्य की खोज जारी है। विज्ञान अभी इस चरम बिन्दु पर नहीं पहुँच पाया है, जहाँ जाकर वह यह कह सके कि अब उसके आगे कुछ नहीं है। धर्म भी ब्रह्म को वैदिक काल से ही 'नेति नेति' कहता आ रहा है अर्थात् उसका कोई अन्त नहीं है। ●

श्रीरामकृष्ण की अन्त्य लीला

—स्वामी प्रभानन्द
सहायक सचिव, रामकृष्ण मठ एवं मिशन
अनुवादिका—डा० नन्दिता भार्गव

नरेन्द्र, मास्टर महाशय आदि भक्तों के साथ श्रीरामकृष्ण बैठे हुए हैं। दिन के दस बजे का समय होगा—मंगलवार २७ अक्टूबर १८८५, आश्विन कृष्ण चतुर्थी।

नरेन्द्रनाथ—"डाक्टर कल कैसी-कैसी बातें कर गया।"

मास्टर महाशय—"मछली कांटे में पड़ गई थी, पर डोर तोड़कर निकल गई।"

श्रीरामकृष्ण (सहास्य)—"नहीं, तोड़ते समय काँटा उसके मुंह में रह गया। इसलिये वह लापता नहीं हो सकती, देखो मरकर अभी उतरायेगी।" नरेन्द्र जरा बाहर गये। श्रीरामकृष्ण मास्टर महाशय के साथ पूर्ण के सम्बन्ध में बातचीत कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण—"भक्त स्वयं को प्रकृति तथा भगवान को पुरुष मानकर उसे गले लगाने तथा चुम्बन करने की इच्छा करता है। पर यह तुम्हीं से कह रहा हूँ, साभान्य जीवों के सुनने की यह बात नहीं।",

मास्टर—"ईश्वर अनेक तरह से लीलाएं करते हैं—आपका रोग भी लीला ही है। इस रोग के होने के कारण यहाँ नये-नये भक्त आ रहे है।"

श्रीरामकृष्ण (सहास्य)—"भूपति कहता है—अगर आपको रोग न होता और किराये से मकान लेकर यहाँ सिर्फ रहते होते तो लोग क्या कहते।"

नरेन्द्र कमरे में आये और पास आकर बैठे। नरेन्द्र के पिता का स्वर्गवास हो जाने के कारण नरेन्द्र बड़ी चिन्ता में पड़ गये हैं। श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र की ओर

स्नेह की दृष्टि से देख रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण (मास्टर से) "अच्छा, केशव सेन से मैंने कहा, यदृच्छालाभ (जो कुछ मिल जाये) जो बड़े घराने का लड़का है, उसे भोजन की चिन्ता नहीं रहती—वह हर महीना जेब-खर्च पाता ही रहता है, परन्तु नरेन्द्र इतने ऊँचे घराने का है, उसके लिये कोई व्यवस्था क्यों नहीं हो जाती! ईश्वर को मन दे देने पर वे सब व्यवस्था कर देते हैं।"

मास्टर महाशय—"जी हाँ कर देंगे। अभी सब समय बीता भी तो नहीं।"

श्रीरामकृष्ण—"परन्तु तीव्र वैराग्य होने पर यह सब हिसाब नहीं रहता। तीव्र वैराग्य होने पर संसार कुँआ और आत्मीय साँप की तरह जान पड़ते हैं। तब रुपये इकट्ठा करूँगा, विषय संचय करूँगा यह हिसाब नहीं रह जाता। ईश्वर ही वस्तु हैं और सब अवस्तु। ईश्वर को छोड़कर विषय चिन्ता!"

"एक स्त्री के ऊपर बड़ा शोक आ पड़ा। पहले उसने अपनी नथ नाक से उतारकर सावधानी से कपड़े में लपेटकर बाँध ली, और फिर रोने लगी "अरी मैया—मुझे यह क्या हुआ?"- और यह कहकर पछाड़ खाकर गिर पड़ी—परन्तु वह भी सावधानी से कहीं बँधी हुई नथ टूट न जाय।"

सब हँस रहे हैं। नरेन्द्र पर ये बातें तीर की तरह चोट करने लगी—वे एक ओर लेटे रहे।

नीचे एक वैष्णव गा रहा था। गाना सुनकर श्रीरामकृष्ण को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने वैष्णव को कुछ पैसे देने के लिये कहा। छोटे नरेन्द्र आज एक यन्त्र लेकर आये हैं। उस यन्त्र से उन्होंने श्रीरामकृष्ण को विद्युत-प्रवाह कैसे होता है यह दिखाया।

दिन के दो बजे होंगे। अतुल अपने एक मित्र को लेकर श्रीरामकृष्ण के पास आये हैं। अतुल के मित्र उपेन्द्रनाथ घोष मुनसिफ हैं। श्रीरामकृष्ण से परिचित होने के बाद अतुल ने उपेन्द्र को वचन दिया था कि वे उसे एक "अपूर्व वस्तु" दिखलायेंगे। इसलिये अतुल आज श्रीरामकृष्ण के पास मित्र को लेकर आये हैं। अतुल ने इस विषय में बताया, "···एक दिन तीसरे पहर में उपेन्द्र को लेकर गया। उस दिन श्रीरामकृष्णदेव के कमरे में उनके बिछौने के पास दो चटाइयाँ बिछी थीं और अनेक व्यक्ति बैठे थे और तरह-तरह का निरर्थक वार्तालाप हो रहा था—उदाहरणार्थ, चित्र खींचने की बात, सुनार की दुकान में सोना-चाँदी गलाने की बात इत्यादि। बहुत देर तक हम लोग वहाँ बैठे रहे, (ऐसी बातों के सिवाय) एक भी अच्छी बात नहीं हुई। हम लोग सोचने लगे, आज इस नये आदमी को लाया और आज ही इतनी निरर्थक बातें? यह (उपेन) श्रीरामकृष्णदेव के सम्बन्ध में कैसा भाव लेकर जायेगा। यह सोचकर मेरा गला सूखने लगा और बीच-बीच में उपेन की ओर मैं डरते हुए देखने लगा। परन्तु जितनी बार देखा, उसका चेहरा प्रसन्न ही प्रतीत हुआ—मानो उन बातों से उसे बहुत ही आनन्द मिल रहा है। तब मैंने उसे उठने के लिए संकेत किया, परन्तु उसने और थोड़ी देर बैठने के लिए कहा। इस तरह दो-तीन बार ईशारा करने के बाद वह उठ आया। मैंने उससे पूछा, तू अब तक क्या सुन रहा था, उन सब बातों में सुनने लायक विषय क्या था?—उसने कहा, "नहीं, मुझे तो अच्छा ही लग रहा था। पहले (Universal Love) ईश्वरीय प्रेम (सबके प्रति समान प्रेम) की बात सुनी थी, परन्तु किसी में उस भाव का प्रकाश नहीं देखा था। हर विषय में सबके साथ उनको (श्रीरामकृष्णदेव को) आनन्द करते देखकर आज उसका अनुभव हुआ।"

शिकदारपारा के प्रसिद्ध चित्रकार अन्नदा बागची आये हुए हैं। बागची की स्त्रियों की भाँति लम्बे बाल। उन्होंने श्रीरामकृष्ण को कई चित्र भेंट किये। कुछ देर बाद नरेन्द्र गाने लगे। गाने वैराग्य के भावों से ओत-प्रोत है। नरेन्द्र गाना गा रहे हैं:—

गाना :—

(१) क्या मेरे दिन विफल ही बीत जायेंगे?···

(२) ऐ अन्तर्यामिनी माँ, तू अन्तर में सदा ही जाग रही है।···

(३) हे दयामय, हे नाथ, यदि तुम्हारे चरण-सरोजों में मेरा मन मधुप चिरकाल के लिए मग्न न हुआ तो मेरे जीवन में सुख ही क्या है?···

साढ़े पाँच बजे के लगभग डाक्टर सरकार आये। डाक्टर सरकार ने आकर श्रीरामकृष्ण की नाड़ी देखी और औषधि की व्यवस्था की। श्रीरामकृष्ण ने औषधि

सेवन की। वहाँ उस समय नरेन्द्र, श्याम बसु, गिरीश, डाक्टर दो कौड़ी, छोटे नरेन्द्र, राखाल, मास्टर महाशय आदि बहुत से भक्त उपस्थित थे। डाक्टर सरकार गाना सुनेंगे इसलिये नरेन्द्र मधुर कण्ठ से गा रहे थे।

गाना—माँ! घोर अंधकार में तुम्हारी अरूपराशि चमक रही है।...यह गाना सुनते श्रीरामकृष्ण भाव समाधि में मग्न हो गये। शरीर निश्चल और नेत्र स्थिर हो गये। नरेन्द्र गा रहे हैं—

गाना "हे दयामय, हे नाथ, यदि तुम्हारे चरण-सरोजों में मेरा मन-मधुप चिरकाल के लिये मग्न न हुआ तो मेरे जीवन में सुख ही क्या है?...

गाना—"वह शुभ प्रभात कब आयेगा जब मेरे हृदय में उस प्रेम का संचार होगा,...

श्रीरामकृष्ण को अब बाहरी संसार का ज्ञान हो गया। (अब वह कठिन पीड़ा कहाँ है?) मुख अभी भी खिले हुए अरविन्द के समान प्रफुल्ल है।

श्रीरामकृष्ण, डाक्टर से कहने लगे—"लज्जा छोड़ो ईश्वर का नाम लेंगे, इसमें लज्जा क्या है? लज्जा, घृणा और भय इन तीनों के रहते ईश्वर नहीं मिलते। मैं इतना बड़ा आदमी और ईश्वर का नाम लेकर नाचूँ? यह बात जब बड़े-बड़े आदमी सुनेंगे तब मुझे क्या कहेंगे? अगर वे कहें, अजी डाक्टर तो अब ईश्वर का नाम लेकर नाचने लगा, तो यह मेरे लिये बड़ी ही लज्जा की बात होगी। इन सब भावों को छोड़ो।"

डाक्टर सरकार—मैं उस तरह का आदमी नहीं हूँ। लोग क्या कहेंगे, इसकी मुझे रत्ती भर परवाह नहीं।

श्रीरामकृष्ण—"इतना तो तुममें खूब है।" सब हँसते हैं।

श्रीरामकृष्ण—"देखो ज्ञान और विज्ञान के पार हो जाओ तब उन्हें समझोगे। बहुत कुछ जानने का नाम है अज्ञान। पाण्डित्य का अहंकार भी अज्ञान है। एक ईश्वर ही सर्वभूतों में हैं, इस निश्चयात्मिका बुद्धि का नाम है ज्ञान। उन्हें विशेष रूप से जानने का नाम है विज्ञान। पैर में कांटा गड़ गया है, उसको निकालने के लिए एक दूसरे कांटे की जरूरत होती है। कांटे से कांटे को निकालकर फिर दोनों कांटे फेंक दिए जाते हैं। पहले अज्ञानरूपी कांटे को दूर करने के लिये ज्ञानरूपी कांटे को लाना होता है। इसके बाद ज्ञान और विज्ञान दोनों को ही फेंक देना पड़ता है। क्योंकि वे ज्ञान और अज्ञान से परे है।"

श्रीरामकृष्ण ने डाक्टर साहब से फिर कहा—"देखो अहंकार के बिना गये ज्ञान नहीं होता। मनुष्य मुक्त तभी होता है जब "मैं" दूर हो जाता है। "मैं" और "मेरा" यही अज्ञान है। "तुम" और "तुम्हारा"—यही ज्ञान है। जो सच्चा भक्त है, वह कह सकता है, हे ईश्वर तुम्हीं कर्ता हो, तुम्हीं सब कुछ कर रहे हो, मैं तो बस यन्त्र ही हूँ। मुझसे जैसा कराते हो, मैं वैसा ही करता हूँ। यह सब धन तुम्हारा है, ऐश्वर्य तुम्हारा है, संसार तुम्हारा है। तुम्हारा ही घर-परिवार है, मेरा कुछ भी नहीं, मैं दास हूँ। तुम्हारी जैसी आज्ञा होगी, उसी के अनुसार सेवा करने का मेरा अधिकार है।"

श्याम बसु ने श्रीरामकृष्ण से पूछा कि जब ईश्वर ही सब कर रहे हैं तो फिर पाप दण्ड कैसा?

श्रीरामकृष्ण ने श्याम बसु के इस बात पर वहाँ उपस्थित सभी को लक्ष्य कर कहा, "अरे भई, तू आम खा ले और प्रसन्न हो जा। बगीचे में कितने सौ पेड़ हैं, कितने हजार डालियाँ हैं, कितने कोटि पत्ते हैं, इन सब के हिसाब से तुझे क्या काम। तू आम खाने के लिए आया है, आम खा जा।"

श्रीरामकृष्ण (श्याम बसु से) तुम्हें इस संसार में मनुष्य का शरीर ईश्वर प्राप्ति की साधना के लिए मिला है। ईश्वर के पाद-पद्मों में किस तरह भक्ति हो उसी की चेष्टा करो। तुम्हें इन सब वृथा बातों से क्या मतलब। फिलॉसफी (दर्शन शास्त्र) लेकर विचार करने से तुम्हारा क्या होगा? देखो, आधा पाव शराब से ही तुम्हें नशा होता है, फिर शराब वाले की दुकान में कितने मन शराब है, इसका हिसाब लगाकर क्या करोगे?"

विवेकानन्द विद्यापीठ, रायपुर

मध्य प्रदेश

भावी योजनाओं की रूपरेखा और निवेदन

स्वरूप

"विवेकानन्द विद्यापीठ" रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा के प्रचार और प्रसार के लिए तथा शिक्षा एवं संस्कृति के उन्नयन के लिए समर्पित एक पंजीकृत धर्मार्थ ट्रस्ट है।

भूमिका

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक-सचिव ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी की हार्दिक इच्छा थी कि रायपुर में स्वामी विवेकानन्दजी के नाम से एक आदर्श विद्यापीठ चलाया जाए जिसमें आधुनिक शिक्षा के साथ-साथ स्वामी विवेकानन्दजी के आदर्शानुसार 'मनुष्य निर्माण करने वाली शिक्षा' (Man-making education) भी दी जाए। रायपुर में विद्यापीठ निर्माण करने की उनकी इच्छा पूरी नहीं हो पायी तथापि बस्तर (म० प्र०) जिले में देश की सर्वाधिक पिछड़ी जाति—अबूझमाड़ियों—के बच्चों को शिक्षित करने के लिए उन्होंने विवेकानन्द विद्यापीठ की स्थापना की जो अब शिक्षा के क्षेत्र में अनेक कीर्तिमान स्थापित कर रहा है। रायपुर में विवेकानन्द विद्यापीठ ट्रस्ट के गठन के पीछे उनकी ही प्रेरणा-शक्ति कार्य कर रही है। संक्षेप में विवेकानन्द विद्यापीठ के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं :—

(१) श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द के जीवन और सन्देश द्वारा प्रदर्शित किये गये सनातन धर्म के स्वरूप को जनसमुदाय के समक्ष प्रचारित करना।

(२) जाति, पंथ या संप्रदाय की भावना से मुक्त एक आदर्श विद्यालय की यथाशीघ्र स्थापना करना, जिसमें समुचित छात्रावास की सुविधा उपलब्ध हो।

(३) योग्य तथा निर्धन छात्रों के लिए निःशुल्क शिक्षा तथा छात्रवृत्ति की व्यवस्था करना।

(४) विभिन्न आध्यात्मिक/सामाजिक/सांस्कृतिक कार्यक्रमों का संचालन एवं संवर्धन करना।

(५) उच्चतर जीवन-मूल्यों को प्रोत्साहित करने वाले साहित्य का प्रकाशन और प्रचार करना।

(६) सामाजिक-स्वास्थ्य, प्रौढ़-शिक्षा तथा व्यावसायिक शिक्षा को प्रोत्साहित करना।

(७) अन्य विविध परोपकारी गतिविधियों का संचालन करना।

हमें यह सूचित करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है कि मध्यप्रदेश शासन ने विवेकानन्द विद्यापीठ के निर्माण के लिए तथा उसकी विविध परोपकारी गतिविधियों के लिए रायपुर नगर में कोटा-गुढ़ियारी मार्ग में ५.४७३ हेक्टेयर (५८८९३१ वर्गफुट) बहुमूल्य भूखण्ड स्थायी पट्टे पर निःशुल्क प्रदान किया है।

रायपुर और स्वामी विवेकानन्द

रायपुर नगर स्वामी विवेकानन्दजी के जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह शायद बहुत कम लोगों को ही विदित है कि जिन स्वामी विवेकानन्द ने अपनी प्रखर तेजस्विता और तीक्ष्ण मेधा से सारे विश्व को प्रभावित और चमत्कृत किया, उनकी किशोरावस्था के दो महत्वपूर्ण वर्ष (१८७७-१८७९) रायपुर नगर में ही बीते और यहाँ की जो स्मृतियाँ उन्होंने संचित की वे उन्हें जीवन भर प्रोत्साहित और प्रेरित करती रहीं। अपनी रायपुर-यात्रा में ही, जब वे लगभग १४ वर्ष के थे, जीवन में पहली बार भाव-समाधि का अनुभव हुआ और वे असीम के आनन्द में डूब गये। इस रायपुर नगर ने ही किशोर नरेन्द्र नाथ दत्त (बाद में स्वामी विवेकानन्द) की देह, मन और बुद्धि को सबल और हृष्ट-पुष्ट किया तथा उनमें छिपी विलक्षण प्रतिभा के विविध आयामों को स्नेहपूर्वक विकसित किया। रायपुर के इसी महत्व के कारण ही ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी ने स्वामी विवेकानन्द

जी की जन्म-शताब्दी (१९६३) के उपलक्ष्य में उनकी स्मृति को चिरस्थायी बनाये रखने के लिए रायपुर में रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम की स्थापना की और उसे अपना कार्यक्षेत्र बनाकर जो विविध लोकोपकारी कार्य उन्होंने किये, वे उनके ही जीवन काल में राष्ट्रीय महत्व के हो गये।

भारत परिक्रमा और शिकागो धर्म महासभा शताब्दी

वर्ष १९९२-९३ स्वामी विवेकानन्द के अनुयायियों, प्रेमियों और प्रशंसकों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। ये वे वर्ष हैं जब सारे विश्व में स्वामी विवेकानन्द की भारत परिक्रमा शताब्दी (१९९२) और शिकागो धर्म-महासभा में उनके योगदान की शताब्दी (१९९३) अत्यन्त उत्साहपूर्वक मनायी जा रही है। वास्तव में स्वामी विवेकानन्द ने अपनी भारत-परिक्रमा के मध्य जो अनुभव संचित किये वे ही भारत की राष्ट्रीय चेतना के विकास के सशक्त कारण हुए। अपनी परिक्रमा के दौरान ही उन्हें भारत के वर्तमान, भूत और भविष्य का दर्शन हुआ और उनके ही शब्दों में वे 'घनीभूत भारत' हो गये। अपनी परिक्रमा के दौरान ही उन्हें भारत की गरीबी और सामाजिक पिछड़ेपन का अनुभव हुआ तथा इसके साथ ही उन्होंने भारत की सांस्कृतिक एकता और आध्यात्मिक ऊर्जा को पहचाना। उनके उन्हीं अनुभवों ने ही आत्म-दृष्टा विवेकानन्द को राष्ट्र-दृष्टा, राष्ट्र-ऋषि और युगनायक विवेकानन्द के पद पर प्रतिष्ठित किया।

भारत-परिक्रमा के समान ही स्वामीजी का अमेरिका के शिकागो नगर में आयोजित विश्वधर्म-महासभा में योगदान का भी अत्यन्त महत्व है। इस विश्वधर्म-महासभा में उन्होंने हिन्दू-धर्म को न केवल शीर्ष स्थान में पहुँचाया अपितु सकल धर्मों के लक्ष्य में एकता का प्रतिपादन भी उन्होंने किया। धर्म के नाम पर शताब्दियों से होने वाले रक्तपात और संघर्ष की असारता का बोध उन्होंने इसी धर्म-महासभा में विश्वजनमानस को कराया और इस रक्तपात और संघर्ष से बचने के लिए सर्वधर्म समभाव के सिद्धान्त का प्रतिपादन भी किया। आज उनका सर्वधर्मसमभाव का सिद्धान्त विश्वमानवता का एक अमूल्य धरोहर बन गया है तथा विश्वशान्ति के लिए सर्वत्र इस भाव के प्रचार और प्रसार की आवश्यकता की अनुभूति अत्यन्त तीव्रता से की जा रही है।

रायपुर में विवेकानन्द विद्यापीठ क्यों ?

चूँकि रायपुर नगर से स्वामी विवेकानन्दजी की स्मृतियाँ अत्यन्त घनिष्ट रूप से जुड़ी हैं और जब हम इन दिनों उनके दो महत्वपूर्ण जीवन-प्रसंगों के घटित होने का शताब्दी समारोह मना रहे हैं, रायपुर में विवेकानन्द विद्यापीठ की स्थापना उनके प्रति एक सच्ची श्रद्धांजलि होगी क्योंकि शिक्षा के प्रचार-प्रसार को ही स्वामी विवेकानन्दजी ने प्रथम राष्ट्रीय दायित्व माना था। वे कहा करते थे कि गरीबों के प्रति हमारा एकमात्र कर्तव्य है—उनको शिक्षित करना। बस उन्हें उसी एक सहायता का प्रयोजन है और शेष सबकुछ उसके फलस्वरूप अपने आप आ जाएगा। एक अन्य अवसर पर उन्होंने कहा था, शिक्षा प्रदान करना—नैतिक और बौद्धिक—हमारा पहला कार्य होना चाहिए। शिक्षा का मतलब यह नहीं कि तुम्हारे दिमाग में ऐसी बहुत-सी बातें इस तरह ठूंस दी जाएँ कि अन्तर्द्वंद्व होने लगे और तुम्हारा दिमाग उन्हें जीवन भर पचा न सके। जिस शिक्षा से हम अपना जीवन-निर्माण कर सकें और विचारों में सामंजस्य कर सकें, वही वास्तव में शिक्षा कहलाने योग्य है।...... इसीलिए हमारा आदर्श यह होना चाहिए कि अपने देश की समग्र आध्यात्मिक और लौकिक शिक्षा के प्रचार का भार हम अपने हाथों में लें और जहां तक संभव हो, राष्ट्रीय रीति से राष्ट्रीय सिद्धान्तों के आधार पर शिक्षा का विस्तार करें।" तो, शिक्षा के सम्बन्ध में ऐसा उदात्त दृष्टिकोण स्वामी विवेकानन्द का था। विवेकानन्द विद्यापीठ जहाँ एक ओर स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा-दर्शन को जीवन में क्रियान्वित करेगा वहीं दूसरी ओर वह ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी के विद्यापीठ-निर्माण करने की अपूर्ण इच्छा की भी पूर्ति करेगा।

विवेकानन्द विद्यापीठ एक अभिनव योजना

विद्यापीठ छात्र-छात्राओं के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिए वांछनीय वातावरण उपलब्ध कराएगा। विद्यापीठ छत्रावास, खेल का मैदान, पुस्तकालय, सभाभवन, व्यायामशाला, शिक्षकों और कर्मचारियों के लिए आवासगृह इत्यादि से सुसज्जित रहेगा। पाठ्यक्रम की पढ़ाई के साथ ही इस बात पर भी बल दिया जायेगा कि वहाँ के छात्र-छात्राओं में आत्मविश्वास, सत्यनिष्ठा, राष्ट्रीयता, संयम आदि सद्‌गुणों का समुचित विकास हो तथा वे आदर्श प्रेमपूर्ण एवं भयमुक्त परिवेश में शिक्षा प्राप्त करें। विद्यापीठ में दी जाने वाली शिक्षा श्रमनिष्ठा पर आधारित एवं रोजगारोन्मुखी होगी।

प्रवेश

विद्यापीठ में पहली से बारहवीं तक की कक्षाएँ होंगी। प्रथम वर्ष पहली और छठवीं की कक्षाएँ एक साथ खोली जायेंगी जिसमें ४०-४० विद्यार्थियों का एक-एक वर्ग होगा। द्वितीय वर्ष से प्रतिवर्ष प्राथयिक तथा माध्यमिक शालाओं में एक-एक कक्षाएँ जुड़ती जायेंगी। जैसे दूसरे वर्ष—दूसरी तथा सातवीं, तीसरे वर्ष—तीसरी तथा आठवीं, चौथे वर्ष—चौथी तथा नववीं, पांचवें वर्ष—पांचवीं तथा दसवीं, छटवें वर्ष—ग्यारहवीं एवं सातवें वर्ष बारहवीं। इस प्रकार सात वर्षों में विद्यापीठ एक आदर्श उच्चतर माध्यमिक शाला के रूपमें पूर्ण रूप विकसित हो जायेगा। प्रवेश योग्यता के आधार पर दिया जायेगा।

विद्यापीठ में सभी जाति एवं सभी वर्ग के बच्चों को प्रवेश मिलेगा। अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा प्रत्येक वर्ग के मेधावी निर्धन तथा असहाय बालक-बालिकाओं के लिए निःशुल्क अध्ययन और छात्रवृत्ति की व्यवस्था रहेगी।

शिक्षक

विद्यापीठ के शिक्षक पर्याप्त अनुभवी, दूरदृष्टि-सम्पन्न, सही नेतृत्व प्रदान करने की क्षमता से युक्त, धैर्यवान, मधुर स्वभाव के साथ ही दृढ़ अनुशासनप्रिय, स्वस्थ, उत्साही तथा उन्नत चरित्र वाले होंगे जो छात्र-चात्राओं में जीवन और अध्ययन के प्रति उत्साह, लगन और कर्मठता जागृत करने में समर्थ होंगे।

अनुमानित लागत

प्रस्तावित विवेकानन्द विद्यापीठ परिसर में विद्यालय, छात्रवास, कर्मचारी आवास आदि भवनों के निर्माण तथा अन्य आवश्यक सुविधाएँ यथा जल, बिजली, मार्ग आदि की व्यवस्था एवं भवनों को सुसज्जित करने के लिए सामग्रियों की खरीदी पर अनुमानित लागत तालिका में दर्शायी गयी है। उपर्युक्त निर्माण-कार्य आर्थिक उपलब्धि के आधार पर विभिन्न चरणों में पूर्ण किये जावेंगे।

तालिका : प्रस्तावित विवेकानन्द विद्यापीठ का अनुमानित लागत (लाख में)
(व्यय अनुमान मूल्य वृद्धि के अनुरूप संशोधन सापेक्ष)

क्रमांक	कार्य का नाम	लागत	क्रमांक	कार्य का नाम	लागत
१.	विद्यालय भवन	१००.००	८.	भूमि-विकास एवं विद्युतीकरण	३.००
२.	छात्रावास	६८.००	९.	आंतरिक सड़क एवं पुलिया निर्माण	४.००
३.	रसोई एवं भोजन कक्ष	१९.६६	१०.	अहाता निर्माण	६.००
४.	कर्मचारी-आवास	३७.००	११.	क्रीड़ा परिसर	१.००
५.	व्यायामशाला	५.५०	१२.	जल प्रदाय	१२.००
६.	कर्मशाला	४.२५	१३.	फर्नीचर विद्यालय हेतु	३.६०
७.	ट्रस्ट कार्यालय एवं साधुनिवास	८.००	१४.	फर्नीचर छात्रावास हेतु	७.४०

विद्यापीठ की प्रस्तुति

विद्यापीठ के पास प्रस्तावित आदर्श विद्यालय हेतु आवश्यकतानुसार मौके पर उपलब्ध विस्तृत भूखंड के अतिरिक्त रामकृष्ण मिशन के आदर्शों से अनुप्राणित, उसकी कार्यशैली से परिचित तथा मिशन के सन्तों के त्यागमय, सेवाभावी, कर्मठ जीवन से प्रेरित एवं उनके मार्गदर्शन में कार्य करने को उत्सुक, धुन के पक्के, अनुभवी शिक्षकों, अभियंताओं, अवकाशप्राप्त प्रशासकीय अधिकारियों आदि प्रबुद्ध जनों की एक समर्पित टोली है जो आर्थिक सहयोग प्राप्त होने पर एक समयबद्ध कार्यक्रम के अनुसार प्रस्तावित विद्यालय की परिकल्पना को मूर्त रूप देने में अपने आपको समर्थ समझती है।

विद्यापीठ मूलतः एक धार्मिक संस्था है जो शिक्षा के माध्यम से बालकों के सर्वतोमुखी विकास हेतु समर्पित है। उसके सम्मुख प्रधान उद्देश्य है—ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी की इच्छा के अनुरूप रामकृष्ण मिशन के प्रतिमान पर बच्चों के सर्वांगीण विकास हेतु शीघ्रातिशीघ्र एवं निश्चय ही इस सदी के अन्त तक स्वामी विवेकानन्दजी के नाम पर प्रस्तावित आदर्श विद्यालय 'विवेकानन्द विद्यापीठ' रायपुर का संपूर्ण निर्माण उसका कुशल उद्देश्य-प्रणोदित संचालन।

हमें आपका सहयोग चाहिए

विद्यापीठ की संक्षिप्त रूपरेखा हमने आपके समक्ष रखने का प्रयास किया है। हमारी योजनाओं की सफलता आप सभी उदार दान-दाताओं के सहयोग पर निर्भर करती है। आपके द्वारा दिया गया छोटे से छोटा दान भी सधन्यवाद स्वीकार किया जायेगा।

जो दानदाता किसी भवन या भवन के किसी एक खण्ड के निर्माण की राशि दानस्वरूप देंगे उस भवन/भवन खंड में दान के स्वरुप उनके अथवा उनके किसी प्रियजन के नाम पर संगमरमर का पत्थर लगा दिया जायेगा। जो दानदाता एक लाख (१,००,०००/-) रुपये दान देकर विद्यापीठ की सहायता करेंगे उनके या उनके किसी प्रियजन के नाम पर किसी एक कक्ष में संगमरमर का पत्थर लगा दिया जायेगा।

यहाँ स्मरणीय है कि विद्यापीठ को दिये गये दान भारतीय आयकर अधिनियम की धारा ८०-जी के अन्तर्गत आयकर से मुक्त हैं। चेक अथवा बैंक ड्राफ्ट "विवेकानन्द विद्यापीठ रायपुर" के नाम पर भेज सकते हैं।

प्रसारक
डॉ० ओमप्रकाश वर्मा
सचिव
विवेकानन्द विद्यापीठ
सिविल लाइन्स, शान्ति नगर
रायपुर-४९२ ००१ (म० प्र०
दूरभाष : ४२४८५८

अब पोलीजार में उपलब्ध
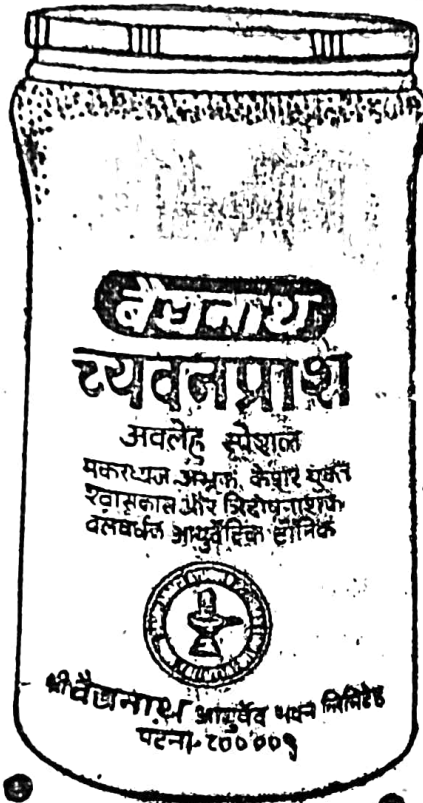
आदर्श आयुर्वेदिक पारिवारिक टानिक

कहीं आपके डिब्बे में "मोपेड" तो नहीं ?

प्रत्येक एक किलो स्पेशल और साधारण एवं ५०० ग्राम - स्पेशल च्यवनप्राश के डिब्बे में इनामी कूपन प्राप्त कर "मोपेड" एवं २०६ अन्य पुरस्कार प्राप्त करने का सुनहरा अवसर ।

बैद्यनाथ ७०० से अधिक दवाएं पांच आधुनिक कारखानों में तैयार कर

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-१

सुनिए स्वामी विवेकानन्द के प्रेरक सन्देश ! देखिए स्वामीजी की जीवन लीला !

शीघ्र लोकार्पित होगा

स्वामी विवेकानन्द की भारत परिक्रमा शताब्दी 1892 - 1992)

तथा

शिकागो विश्व-धर्म-महासभा में सहभागिता-शताब्दी (1893 - 1993)

की अमृत बेला में

आत्म-चैतन्यदायी वाणी एवं भजनों का ऑडियो कैसेट

"उठो-जागो"

दिव्य जीवन और जीवनदायी संदेशों से युक्त चित्ताकर्षक वीडियो कैसेट

"युगनायक"

* अपनी प्रति अभी से सुरक्षित करा लें
* अपने परिजनों, पुरजनों, बन्धु बान्धवों, छात्र-छात्राओं को उपहार में, पुरस्कार में और त्योहार में अर्पित करें
* राष्ट्रनिर्माता, युवाशक्ति के प्रेरक और दीन-दलितों के उन्नयनकर्ता के संदेशों को गाँव-गाँव में, नगर-नगर में, गली-गली में पहुँचाने के कर्मयज्ञ में प्रदर्शनों को आयोजित कर सहभागी बनें।

सम्पर्क करें :— रामकृष्ण मिशन आश्रम
दिव्यायन कृषि विज्ञान केन्द्र
मोराबादी, राँची-834008

डाक पंजीयित संख्या — सी एच पी — १८-८३

स्वामी विवेकानन्दकृत योग पर विख्यात पुस्तकें

ज्ञानयोगः—

वेदान्त के गूढ़ तत्त्वों का सरल, स्पष्ट तथा सुन्दर रूप से विवेचन ।

राजयोग (पातंजल योगसूत्र, सूत्रार्थ और व्याख्यासहित)ः—

प्राणायाम-ध्यान-धारणा द्वारा समाधि-अवस्था की प्राप्ति के विषय में उपयोगी सूचनाएँ और मार्गप्रदर्शन ।

कर्मयोगः—

'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च' इस आदर्श के अनुसार कर्म किस प्रकार किये जाएँ, जिससे वे परम शान्ति का निदान बनें — इस रहस्य का विवरण ।

भक्तियोगः—

भक्ति का सच्चा अर्थ, सच्चे भक्त का जीवन तथा भक्तिमार्ग पर अधिकाधिक अग्रसर होने के लिए आवश्यक गुण तथा साधनाएँ — इस विषय का अत्यन्त रोचक एवं मौलिक दर्शन ।

प्रेमयोगः—

प्रत्येक मानव के हृदय में निहित महान् शक्ति प्रेम का जीवन के सर्वोच्च ध्येय भगवत्प्राप्ति के लिए उपयोग किस प्रकार करें, इसका अत्यन्त भावपूर्ण विवेचन ।

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखिए :—

रामकृष्ण मठ

धन्तोली, नागपुर— ४४० ०१२

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं
श्रीकांत लाभ द्वारा जनता प्रेस, नया टोला, पटना — ४ में मुद्रित ।